तृतीय अंक

वर्ष 2 संख्या 1
जनवरी-जून, 2020

कृषि-जीवन

बुन्देलखण्ड कृषि इन्द्रधनुषी क्रांति की ओर अग्रसर............

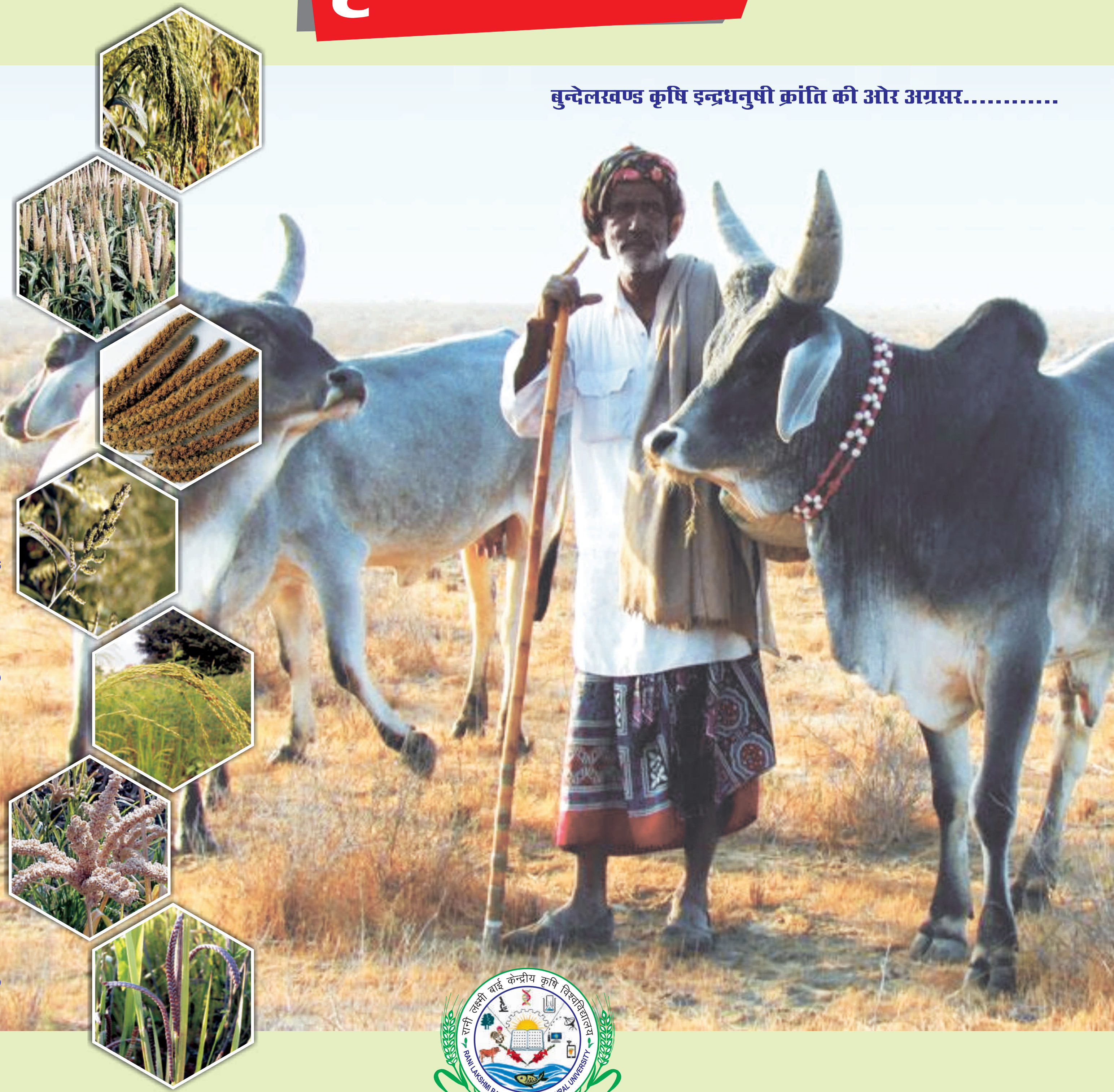

'बुन्देलखण्ड में मोटे अनाजों एवं छद्म अन्नों का पुर्नउत्पादन और मूल्यसंवर्धन : एग्री-स्टार्टअप एवं उद्यमिता विकास की असीम संभावनाएं'

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय
झाँसी-284 003 (उ.प्र.) भारत

कृषि जीवन

वर्ष 2 संख्या 1   जनवरी–जून, 2020

संरक्षक
डॉ. अरविन्द कुमार
कुलपति

मुख्य संपादक
डॉ. अनिल कुमार
निदेशक शिक्षा

संपादक
डॉ. विष्णु कुमार
(सह–प्राध्यापक)

संपादक सलाहकार
डॉ. एस.के. चतुर्वेदी
(अधिष्ठाता कृषि संकाय)
डॉ. ए.के. पाण्डेय
(अधिष्ठाता कृषि एवं वानिकी)
डॉ. ए.आर. शर्मा
(निदेशक शोध)
डॉ. मुकेश श्रीवास्तव
कुलसचिव
डॉ. एस.एस. सिंह
निदेशक प्रसार शिक्षा
डॉ. कुसुमाकर शर्मा
सलाहकार

संपादक मंण्डल
डॉ. गौरव शर्मा
डॉ. शुभा त्रिवेदी
डॉ. राकेश चौधरी
डॉ. अमित तोमर
(रा.ल.बा.के.कृ.वि.वि., झाँसी)
डॉ. आर.एस. सेंगर
(स.ब.प.कृ.वि.वि., मेरठ)
डॉ. दिनेश जोशी
(वि.प.कृ.अनु.सं., अल्मोड़ा)
डॉ. मनीत राणा
(भा.च. एवं चा.अनु.सं., झाँसी)

पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के अपने निजी है। संपादक, प्रकाशक की सहमति और उत्तरदायी होना अनिवार्य नहीं है। लेख में लेखक का पूरा पता प्रकाशित किया जाता है। अतः कोई भी जानकारी लेखक से ली जा सकती है।

निदेशक शिक्षा
ई–मेल : directoreducation.rlbcau@gmail.com

सूची

कुलपति जी की कलम से

संपादकीय : बुन्देलखण्ड में मोटे अनाजों एवं छद्म अन्नों का पुर्नउत्पादन और मूल्यसंवर्धन : एग्री–स्टार्टअप एवं उद्यमिता विकास की असीम संभावनायें

इस अंक में :

1. बुन्देलखण्ड में मोटे अनाजों का पुर्नउत्पादन और मूल्य संवर्धनः एग्री–स्टार्टअप की अपार संभावनाएं
2. कदन्न फसलें व नमी संरक्षण : जलवायु परिवर्तन द्वारा उत्पन्न सूखे से बचाव की दिशा में एक कदम
3. लघु अन्न फसलों की महत्ता व उन्नत प्रजातियाँ
4. लघु कदन्नों की उत्पादन तकनीकी
5. मोटे अनाजों में ट्राइकोडरमा द्वारा जैविक नियंत्रण
6. जीवन शैली संबंधी विकारों एवं कुपोषण में लघु कदन्नों की उपयोगिता
7. मोटा अनाज : संभावित न्यूट्रास्यूटिकल लाभ एवं व्यवसाय
8. कदन्न उत्पाद और उद्यमिता विकास
9. रागी (फिंगर मिलेट) के निगमन और समग्र विकास द्वारा सूखाग्रसित बुन्देलखण्ड में पोषण सुरक्षा की संभावनाये
10. मंडुआ की वैज्ञानिक विधि से खेती
11. बुन्देलखण्ड के बदलते जलवायु परिदृश्य में पोषण सुरक्षा हेतु गैर–परंपरागत फसल रामदाना की अपार संभावनायें
12. सूखाग्रस्त बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पोषण सुरक्षा हेतु सावा (बार्नयार्ड मिलेट) एक क्षमतावान विकल्प
13. जौ के स्वास्थ्य लाभ एवं उत्पादन तकनीकी
14. जौ ऐसा अन्न–स्वस्थ रखे तन
15. ज्वार की आधुनिक खेती के तरीके
16. कदन्न फसलों में लगने वाले कीड़े एवं उनकी रोकथाम

प्रकाशक : शिक्षा निदेशालय,

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी - 284003 (उ.प्र.) भारत

कॉपीराइट : रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

कुलपति जी की कलम से.........................

भारत, दुनिया में मोटे अनाजों का सबसे बड़ा उत्पादक देश बनने की स्थिति में है। देश के विभिन्न राज्यों में लोगों के व्यंजन–सूची में मोटे अनाजों को लाने के लिये कई कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं। सरकार पोषण सुरक्षा हासिल करने के लिये मिशन स्तर पर रागी और ज्वार जैसे मोटे अनाजों की खेती को प्रोत्साहित कर रही है। सरकार द्वारा मोटे पोषण अनाजों को समर्थन मूल्य पर खरीदा जा रहा है और इसे मध्यान्ह भोजन योजना एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत शामिल किया जा रहा है। मोटे अनाजों की फसलों का रकबा बढ़ाने के उद्देश्य से, वर्षा आधारित सिंचित क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फसलों को बढ़ावा देने के लिये, पंचवर्षीय योजना के तहत मोटे अनाजों के उपयोग की माँग कार्यक्रम के तहत, मोटे अनाजों के पोषण और स्वास्थ्य सम्बंधी लाभों पर ग्रामीण और शहरी लोगों के बीच जागरूकता बढ़ाने का भी प्रयास किया जा रहा है।

मोटे अनाजों के मूल्य संवर्धित उत्पादों की माँग को 2–3 गुना बढ़ाए जाने की आवश्यकता है। हमें ऐसे मूल्य संवर्धित उत्पादों के लिये एक सतत् ब्रांड बनाने की जरूरत है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन में कदन्न परिवार की सभी फसलों का उत्पादन दोगुना करने का लक्ष्य रखा गया है। दानों के आकार के आधार पर मोटे अनाजों को दो भागों में बाँटा गया है। पहला मोटा अनाज जिनमें ज्वार और बाजरा आते हैं। दूसरा लघु अनाज, बहुत छोटे दाने वाले मोटे अनाज, जैसे रागी, कंगनी, कोदो, चीना, सावां और कुटकी आदि।

मोटे अनाजों की खेती करने के अनेक लाभ हैं जैसे सूखा सहन करने की क्षमता, फसल पकने की कम अवधि, उर्वरकों, खादों की न्यूनतम माँग के कारण कम लागत, रोगों एवं कीटों से लड़ने के लिए रोग–प्रतिरोधक क्षमता। कम पानी और बंजर भूमि तथा विपरीत मौसम में भी ये अनाज उगाये जा सकते हैं। सलह्वार, कांग, ज्वार, मक्का, महिया, कुटकी, सावां, कोदो आदि में यदि प्रोटीन, वसा, खनिज तत्व, रेशा, कार्बोहाइड्रेट, ऊर्जा (कैलोरी), कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, कैरोटीन, फोलिक एसिड, जिंक तथा एमिनो एसिड की तुलना गेहूँ, चावल जैसे अनाजों के साथ की जाये तो खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में मोटे अनाजों को सर्वोत्तम श्रेणी में रखा जा सकता है।

भारत के राजपत्र 13 अप्रैल, 2018 के अनुसार, कदन्न फसलों (ज्वार, बाजरा, रागी आदि) में देश की पोषण संबंधी सुरक्षा में योगदान देने की बहुत अधिक क्षमता है। इसी को ध्यान में रखते हुये भारत में राष्ट्रीय कदन्न वर्ष 2018 में मनाया गया था। इस प्रकार मोटे अनाजों में न केवल पोषक तत्वों का भंडार है बल्कि ये जलवायु परिवर्तन सहनशील वाली फसलें हैं और इनमें अद्भुत पोषण संबंधी विशेषतायें भी हैं। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन ने वर्ष 2023 को अन्तर्राष्ट्रीय कदन्न वर्ष घोषित करने के प्रस्ताव का समर्थन किया है।

कृषि जीवन के तृतीय अंक में बुन्देलखण्ड के अनुकूल मोटे अनाजों के पुर्नउत्पादन एवं मूल्य संवर्धन के प्रोत्साहन हेतु समर्पित अंक प्रस्तुत करते हुये हर्ष की अनुभूति हो रही है। डॉ. अनिल कुमार, निदेशक शिक्षा के नेतृत्व में इस दिशा में किये गये प्रयास सराहनीय हैं। समस्त सम्पादक मण्डल के सदस्य इसके लिये बधाई के पात्र हैं।

(अरविन्द कुमार)
कुलपति

सम्पादकीय

''बुन्देलखण्ड में मोटे अनाजों एवं छद्म अन्नों का पुर्नउत्पादन और मूल्यसंवर्धन : एग्री–स्टार्टअप एवं उद्यमिता विकास की असीम संभावनायें''

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत के प्राचीनतम यजुर्वेद ग्रंथ में मोटे अनाजों का उल्लेख किया गया है, यहाँ तक कि 50 साल पहले तक भारत में उगाये जाने वाले ये प्रमुख अनाज थे। एक प्रधान भोजन और स्थानीय खाद्य संस्कृतियों के अभिन्न अंग के, बावजूद, कई अन्य चीजों की तरह, आधुनिक शहरी उपभोक्ताओं द्वारा "मोटे अनाजों" को पीछे छोड़ दिया और अधिक "परिष्कृत" आहार लेने से भोजन में महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की कमी हुई है, जबकि पूर्व में स्थानीय स्तर पर प्रयुक्त विभिन्न मोटे अनाजों के सेवन से सम्पूर्ण आहार के रूप में सभी उपयोगी पोषक तत्वों की उपलब्धता थी। भारत और अन्य विकासशील देशों ने बहुत उपयोगी और सार्थक चीजों को खो दिया है। भोजन की आदतों में बदलाव सबसे बड़े परिवर्तनों में से एक रहीं हैं। भोजन जितना संभव हो उतना स्थानीय और पौष्टिक होना चाहिये। हम अपने स्वदेशी खाद्य पदार्थों को भूल रहे हैं और आधुनिकी मानवीकरण का पीछा कर रहे हैं। बहुत अधिक जनसंख्या की खाद्य उपलब्धता सुनिश्चित करने और गेहूँ एवं चावल की बौनी प्रजातियों को बढ़ावा देने से, मोटे अनाजों के उत्पादन और खपत में भारी गिरावट दर्ज की गई एवं पोषकता से भरपूर मोटे अनाजों का भोजन में समावेश करना छोड़ दिया गया है।

हरित क्रांति से पहले मोटे अनाज की खेती का लगभग 40 प्रतिशत (गेहूँ और चावल से अधिक) योगदान रहता था। हालाँकि, हरित क्रांति के बाद से चावल और गेहूँ का उत्पादन कई गुना हो गया है। जबकि मोटे अनाजों के उत्पादन में न केवल विश्व अपितु भारत के कई क्षेत्रों जैसे कि बुन्देलखण्ड में उत्पादन में गिरावट आयी बल्कि उत्पादन न के बराबर किया जाने लगा। मोटे अनाजों का बुन्देलखण्ड सहित अन्य स्थानों में पुनः उत्पादन के प्रोत्साहन हेतु किसानों को बेहतर मशीनरी जैसे कि हारवेस्टर और मशीनरी प्रोसेसर मिलों के अतिरिक्त समर्थन मूल्य एवं सब्सिडी की आवश्यकता है, जो उत्पादन की लागत को नीचे ला सकता है। मोटे अनाजों के मूल्य संवर्धन हेतु प्रसंस्करण अभी भी एक बड़ी चुनौती है। प्रसंस्करण क्षमताओं के लिये एक विकेन्द्रीकृत मॉडल को विकसित करने की आवश्यकता है ताकि उत्पादकों को सामुदायिक स्तर पर और विभिन्न क्षेत्रों में लाभ के अवसर प्राप्त हो सकें।

केन्द्रीय मोटे अनाज खाद्य मिशन प्रसंस्करण के माध्यम से मूल्य संवर्धन एवं अधिक उपज से किसानों को सशक्त बनाने पर ध्यान केन्द्रित करेगा। मंडियों में मोटे अनाजों की कीमतें कम हैं एवं किसानों को अपनी उपज बेचने में समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। यह सुरक्षित करने के लिये राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन किसानों के पास बेहतर गुणवत्ता वाले बीजों की पहुँच के लिए देश भर में 'सीड हब' बनाने और फसल सुधार पर ध्यान केन्द्रित कर रहा है। इसके अतिरिक्त मूल्य संवर्धित उत्पादों के सामूहिक, या समूह विपणन मार्केटिंग को भी सुनिश्चित करने के भी अवसर प्रदान करेगा। विभिन्न राज्य, चावल, गेहूँ जैसे अन्य अनाज के साथ सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.) के माध्यम से बाजरा, ज्वार और रागी वितरित कर रहे हैं। अब बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में मिड–डे मील योजनाओं में पोषक तत्वों से भरपूर मोटे अनाजों को शामिल करने का प्रयास किया जा रहा है। शिशु आहार, नाश्ते में अनाज से लेकर बेकरी उत्पाद, मिठाइयाँ, आइसक्रीम और अन्य उत्पादों में मोटे अनाजों का प्रयोग इसकी खपत को बढ़ा रहे है। अतः मोटे अनाजों के मूल्य संवर्धन से बनने बाले गुणवत्तायुक्त उत्पादों से एग्री–स्टार्टअप एवं उद्यमिता विकास की असीम संभावनायें हैं। पैक किये गये प्रमुख भोजन और प्रसंस्कृत खाद्य निर्माताओं एवं नए उभरते हुये स्टार्टअप ने पहले ही अपने उत्पादों में मोटे अनाजों को सम्मिलित किया है।

मोटे अनाजों पर नए सिरे से ध्यान केन्द्रित करने एवं स्टार्टअप क्रांति को प्रोत्साहन देने से रोजगार एवं नई नौकरियों के सृजन में वृद्धि होगी। उद्यमियों में से कई मुख्य रूप से विभिन्न मोटे अनाज आधारित खाद्य पदार्थों कां विक्रय सेवा करने वाले कैफे शहरों में लोकप्रिय हो रहे हैं। इसी को ध्यान में रखते हुये रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय पूर्ण रूप से सजग हैं और अपने कार्यक्रमों में "मोटे अनाजों के उत्पादन, मूल्य संवर्धन, एग्री–स्टार्टअप एवं उद्यमिता विकास का विस्तार कर रहा है एवं बुन्देलखण्ड की जलवायु के अनुकूल मोटे– अनाज आधारित बीजों के उत्पादन, एग्री प्रोडक्ट्स तथा मॉडल विकसित किये जा रहे हैं।

विश्वविद्यालय की प्रकाशन श्रृंखला "कृषि जीवन" के तीसरे अंक को सौंपते हुये अत्यंत हर्ष हो रहा है। इस अंक में विभिन्न संस्थानों एवं विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों एवं संकाय सदस्यों के बहुमूल्य लेख जो कि बुन्देलखण्ड के किसानों को मोटे अनाजों के उत्पादन के लिये प्रेरित करेंगे तथा ये लेख, निश्चित रूप से किसानों, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को उद्यमिता विकास की नई सोच एवं पोषक सुरक्षा हेतु बुन्देलखण्ड में मोटे–अनाजों के उत्पादन एवं मूल्य संवर्धन हेतु अपना योगदान देंगे।

(अनिल कुमार)
मुख्य सम्पादक एवं निदेशक शिक्षा

विषय सूची

क्र.स.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	बुन्देलखण्ड में मोटे अनाजों का पुर्नउत्पादन और मूल्य संवर्धनः एग्री–स्टार्टअप की अपार संभावनाएं *अनिल कुमार, मनोज कुमार त्रिपाठी एवं मनीत राणा*	1
2.	कदन्न फसलें व नमी संरक्षण : जलवायु परिवर्तन द्वारा उत्पन्न सूखे से बचाव की दिशा में एक कदम *राजपाल मीना, सूरज गोस्वामी, अंकिता झा, कर्णम वेंकटेश एवं विष्णु कुमार*	5
3.	लघु अन्न फसलों की महत्ता व उन्नत प्रजातियाँ *शैलेज सूद*	9
4.	लघु कदन्नों की उत्पादन तकनीकी *दिलीप पंवार, मनोज कुमार सैनी, संजय एच.बी., वी. अंजुला कृष्णा एवं पी. सुप्रिया*	12
5.	मोटे अनाजों में ट्राइकोडरमा द्वारा जैविक नियंत्रण *राकेश सिंह सेंगर, अभिषेक सिंह एवं आलोक कुमार सिंह*	15
6.	जीवन शैली संबंधी विकारों एवं कुपोषण में लघु कदन्नों की उपयोगिता *दिवाकर सिंह, उदित एम. नकरानी एवं किरण पी. सुथार*	18
7.	मोटा अनाज : संभावित न्यूट्रास्यूटिकल लाभ एवं व्यवसाय *मनोज कुमार त्रिपाठी, अनिल कुमार, देबन्या महापात्रा एवं सुमेधा स. देशपांडे*	22
8.	कदन्न उत्पाद और उद्यमिता विकास *सुमेधा देशपांडे, एम.पी. त्रिपाठी, देबन्या माहापात्र एवं प्रवीण निषाद*	24
9.	रागी (फिंगर मिलेट) के निगमन और समग्र विकास द्वारा सूखाग्रसित बुन्देलखण्ड में पोषण सुरक्षा की संभावनायें *डी.सी. जोशी, आर.पी. मीणा, हनुमान राम एवं मनोज परिहार*	26
10.	मंडुआ की वैज्ञानिक विधि से खेती *राकेश सिंह सेंगर, आलोक कुमार सिंह एवं अभिषेक सिंह*	31
11.	बुन्देलखण्ड के बदलते जलवायु परिदृश्य में पोषण सुरक्षा हेतु गैरपरंपरागत फसल रामदाना की अपार संभावनायें *डी.सी. जोशी, हनुमान राम, आर.पी. मीणा एवं मनोज परिहार*	34
12.	सूखाग्रस्त बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पोषण सुरक्षा हेतु सावा (बार्नयार्ड मिलेट) एक क्षमतावान विकल्प *डी.सी. जोशी, आर.पी. मीणा, मनोज परिहार एवं हनुमान राम*	40
13.	जौ के स्वास्थ्य लाभ एवं उत्पादन तकनीकी *अजीत सिंह खरब, दिनेश कुमार, विष्णु कुमार, आर.पी.एस. वर्मा एवं जी.पी. सिंह*	44
14.	जौ ऐसा अन्न–स्वस्थ रखे तन *दिनेश कुमार , विष्णु कुमार एवं अजीत सिंह खरब*	48
15.	ज्वार की आधुनिक खेती के तरीकें *रूमाना खान, विष्णु कुमार एवं अमित तोमर*	50
16.	कदन्न फसलों में लगने वाले कीड़े एवं उनकी रोकथाम *सुन्दर पाल पंवार*	53

बुन्देलखण्ड में मोटे अनाजों का पुर्नउत्पादन और मूल्य संवर्धनः एग्री–स्टार्टअप की अपार संभावनाए

अनिल कुमार[1] , मनोज कुमार त्रिपाठी[2] एवं मनीत राणा[3]

सारांश : दानों के आकार के आधार पर मोटे अनाजों को दो भागों में बाँटा गया है। पहला मोटा अनाज जिनमें ज्वार और बाजरा आते हैं। दूसरा लघु अनाज जिनमें बहुत छोटे दाने वाले मोटे अनाज जैसे रागी, कंगनी कोदो, चीना सांवा और कुटकी आदि आते हैं। मोटे अनाजों की खेती करने के अनेक लाभ हैं जैसे सूखा सहन करने की क्षमता, फसल पकने की कम अवधि, उर्वरकों खादों की न्यूनतम माँग के कारण कम लागत, कीटों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता। कम पानी, अल्प उपजाऊ भूमि तथा विपरीत मौसम में भी ये अनाज उगाए जा सकते हैं।

प्रस्तावना :

स्वस्थ जीवन जीने के लिये समुचित मात्रा में पोषक खाद्यान्न की आवश्यकता होती है। खाद्य एंव पोषण सुरक्षा का उद्देश्य जन सामान्य के लिए पोषक खाद्य पदार्थों की उपलब्धता सुनिश्चित करना है। कृषि बुन्देलखण्ड अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। अनिश्चित वर्षा और खराब गुणवत्ता वाली मिट्टी के अर्ध–शुष्क जलवायु ने पूरे क्षेत्र में कृषि को एक कठिन और गैर–लाभकारी व्यवसाय बना दिया है। यह सीमित या अपर्याप्त भूजल संसाधनों के साथ एक कठोर चट्टान क्षेत्र है, जिसमें बुनियादी सुविधाओं की कमी है जिसके परिणामस्वरूप फसल उत्पादकता कम है। संसाधनों की अपर्याप्तता ने कई किसानों को खेती की अधिक कुशल विधियाँ अपनाने से रोक दिया है (चित्र–1)। परिणाम स्वरूप अधिकांश निर्वाह माध्यम कृषि बन गई है जो क्षेत्र के किसानों को गरीबी में जकड़े रखती है। शैक्षिक अवसर कम हैं और इस क्षेत्र में वयस्क साक्षरता कम है। सूखे व बदहाली की बात पर बुन्देलखण्ड का नाम आम जन की जुबां पर पहले आ जाता है। सिंचाई की बेहतर सुविधा न होने के कारण महाराष्ट्र के विदर्भ की भांति बुन्देलखण्ड के कुछ किसान भी फसलों के खराब होने पर मौत को गले लगाने के लिए विवश होते हैं।

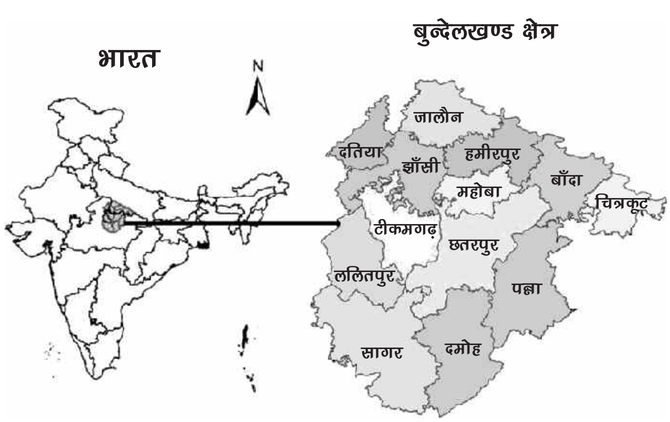

चित्र 1: बुन्देलखण्ड क्षेत्र (स्रोत : www.bundelkhand.in)

हरित क्रांति ने भारत को खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाकर और अनाज का निर्यातक बनने की हालत में लाकर कुछ बड़ा बदलाव किया है। खाद्य एवं पोषण की सुरक्षा एक ऐसी स्थिति है जब सभी लोग हर समय पर्याप्त और जरूरी मात्रा में गुणवत्ता युक्त भोजन का वास्तविक रूप में प्रयोग कर सकते है। जीवन को सक्रिय और स्वस्थ रूप से जीने के लिए इस भोजन में विभिन्नता, विविधता, पोषक तत्वों की मौजूदगी और खाद्य सुरक्षा भी निहित हो।

मोटे अनाज ग्रामीण परिवेश में उगाये जाने वाले वे अनाज हैं जो प्रायः शहरी व्यक्तियों द्वारा उपेक्षित किए जाते हैं परंतु ये अनाज पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। मोटे अनाजों जैसे रागी, ज्वार, बाजरा, मक्का, आदि में कैल्शियम तथा लौह तत्व जैसे जरूरी खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसके अतिरिक्त इन फसलों में उच्च गुणवत्ता युक्त घुलनशील फाइबर पाये जाते हैं जो मधुमेह एवं हृदय रोगों की रोकथाम में मदद करते हैं। इनमे पाये जाने वाली प्रोटीनों का पोषक गुण अधिक होता है, अतः इन मोटे अनाजों से इन प्रोटीन को चिन्हित् करने वाले जीनों को पहचान कर बायोफोर्टिफिकेशन में प्रयोग कर सकते हैं। मोटे अनाजों को मिश्रित कर कुछ नए उत्पादों का निर्माण किया जा सकता है जो पोषण के साथ–साथ विशिष्ट रोगों से रोकथाम के लिए प्रयोग किए जा सकें। वर्तमान में मोटे अनाजों की पोषकता को दृष्टिगत रखते हुए जन–सामान्य में इन अनाजों के प्रति रूचि उत्पन्न हुई है तथा इनकी माँग में वृद्धि हो रही है जिसके कारण आगामी वर्षों में मोटे अनाज के बाजार के बढ़ने की अपार संभावनाएं हैं। ऐसे समय में बुन्देलखण्ड के किसानों को मोटे अनाजों के पुर्नउत्पादन हेतु प्रोत्साहित करके उनकी आय में वृद्धि की जा सकती है।

पोषण सुरक्षा में मोटे अनाजों का महत्व

मोटे अनाज दुनिया के सबसे महत्वपूर्ण अनाज के रूप में शुमार है और कई देशों में आहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। चीन भारत

[1]निदेशक शिक्षा, रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी [2]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषि अभियान्त्रिकी संस्थान, भोपाल [3]वैज्ञानिक, भाकृअनुप–भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी

और नाइजर आज दुनिया में मोटे अनाज के सबसे बड़े उत्पादक देश हैं। पारंपरिक मोटे अनाज न केवल किसानों की पोषण सामग्री और स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले गुणों के कारण, बल्कि कम निवेश लागत स्थितियों और अत्यधिक पर्यावरणीय तनाव विशेष रूप से सूखे के प्रति सहिष्णुता की क्षमता के कारण भी विशेष महत्व रखते हैं। मोटे अनाजों जैसै सल्हार, कांग, ज्वार, मक्का, मँडुआ, कुटकी, सांवा, कोदो आदि में भी प्रोटीन, वसा, खनिज तत्त्व, फाइबर, कार्बोहाइड्रेट, ऊर्जा, कैलोरी, कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, कैरोटीन, फोलिक ऐसिड, जिंक तथा एमिनो एसिड की तुलना गेहूँ चावल जैसे अनाजों के साथ की जाए तो किसी भी प्रकार से इन्हें कम नहीं आँका जा सकता। भारत के राजपत्र 13 अप्रैल, 2018 के अनुसार मिलेट (ज्वार, बाजरा, रागी आदि) में देश की पोषण संबंधी सुरक्षा में योगदान देने की बहुत अधिक क्षमता है।

मोटे अनाज और उनके पोषक मान

रागी को भारतीय मूल का माना जाता है और यह उच्च पोषण मान वाला मोटा अनाज होता है जिसमें 344 मिग्रा/100 ग्राम कैल्शियम होता है। दूसरे किसी भी अनाज में कैल्शियम की इतनी अधिक मात्रा नहीं पाई जाती है। रागी में लौह तत्त्व की मात्रा 3.9 मिग्रा/100 ग्राम होती है जो बाजरे को छोड़कर सभी अनाजों से अधिक है। रागी खाने की सलाह मधुमेह के रोगियों को दी जाती है। पारंपरिक रूप से रागी का इस्तेमाल खिचड़ी जैसे आहार के रूप में किया जाता है। रागी के प्रयोग से कई रोगों जैसे मधुमेह, हृदय रोगों, ऑस्टियोपोरोसिस, कैंसर आदि के खतरों को बहुत हद तक कम किया जा सकता है।

बाजरा

बाजरे का इस्तेमाल कई औद्योगिक उत्पादों में किया जाता है। बाजरे के 100 ग्राम खाद्य हिस्से में लगभग 11.6 ग्राम प्रोटीन, 67.5 ग्राम कार्बोहाइडेट, 8 मिलीग्राम लौह तत्व और 132 माइक्रोग्राम कैरोटीन मौजूद होता है, जो हमारी आँखों की सुरक्षा करता है। भले ही इसमें फाइटिक अम्ल, पॉलीफेनॉल और एमाइलेज जैसे कुछ पोषण–निरोधी अवरोधक होते हैं, पर पानी में भिगोने के बाद अंकुरण और अन्य पकाने की विधियों से इसके पोषण–निरोधी तत्त्वों में कमी हो जाती है।

ज्वार

ज्वार का औद्योगिक उपयोग अन्य मोटे अनाजों की तुलना में अधिक होता है। इसका उपयोग शराब उद्योग, डबलरोटी उत्पादन उद्योग एवं गेहूँ–ज्वार संयोजन में किया जाता है। व्यापारिक रूप से शिशु आहार बनाने वाले उद्योगों में ज्वार चवली तथा ज्वार सोयाबीन संयोजन का इस्तेमाल किया जाता है। इसमें 10.4 ग्राम प्रोटीन, 66.2 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 2.7 ग्राम रेशा और अन्य सूक्ष्म तथा वृहत पोषण तत्त्व मौजूद होते हैं।

पोषण सुरक्षा तथा मानव स्वास्थ्य में मोटे अनाजों की महत्ता

खाद्यान्न सदियों से पोषित पोषण का एक स्रोत है। विभिन्न खनिजों, विटामिन और पोषक तत्वों की आवश्यकता फसलों द्वारा पूरी होती है। हमारे शरीर में प्रत्येक पोषक तत्व एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अधिकांश बीमारियों का कारण कुछ पोषक तत्वों, खनिज या विटामिन का अधिक संश्लेषण एवं कम संश्लेषण है। सिर्फ उचित खाना खाने से व्यक्ति कई बीमारियों से बच सकता है। भोजन के सही संयोजन का उपयोग करके मधुमेह, कार्डियो–वैस्कुलर रोगों, ऑस्टियोपोरोसिस, कैंसर आदि जैसे रोगों के जोखिम को काफी हद तक कम किया जा सकता है। मोटे अनाज अत्यधिक पौष्टिक, गैर–ग्लूटिनस और गैर अम्ल बनाने वाले खाद्य पदार्थ हैं। इसके अलावा, यह विभिन्न खनिजों, विटामिन और पोषक तत्वों को पचाने और स्टोर करने में आसान होते हैं। आज मुख्य धारा के आहारों में गायब अधिकांश सूक्ष्म पोषक तत्व मोटे अनाजों में मौजूद हैं। इस प्रकार, उन्हें आश्चर्य अनाज के रूप में माना जा सकता है।

मोटे अनाजों में विद्यमान पोषक तत्वों का महत्व

विटामिन तथा खनिज लवण

मोटे अनाजों में नियासिन (विटामिन बी 3) कोलेस्ट्रॉल कम करने में मदद कर सकता है। यह विटामिन डी का प्राकृतिक स्रोत भी है जो ज्यादातर सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होता है। मोटे अनाजों में फास्फोरस, वसा उपापचय शरीर के ऊतकों की मरम्मत और ऊर्जा बनाने में मदद करता है (फास्फोरस आपके शरीर में ऊर्जा के अग्रदूत के रूप में एडेनोसिन ट्राइफॉस्फेट या एटीपी का एक आवश्यक घटक है)। मोटे अनाजों मे कैल्शियम का समृद्ध स्रोत होता है जो स्वस्थ हड्डियों और दांतों के लिए महत्वपूर्ण है और ऑस्टियोपोरोसिस से बचाता है।

एमिनो अम्ल (अमीनो)

मोटे अनाजों में मौजूद लाइसिन और मेशिओनिन जैसे आवश्यक अमीनो अम्ल त्वचा को युवा बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

लौह तत्व

मोटे अनाज प्राकृतिक लोहे का एक उत्कृष्ट स्रोत है और इस प्रकार यह एनीमिया के रोगियों के लिए और कम हीमोग्लोबिन स्तर वाले लोगों के लिए एक वरदान है।

आहार रेशे

आहार रेशे को वनस्पति कोशिका के ऐसे घटक के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो हमारे भोजन में मौजूद रहते हैं। आहार रेशों के बड़े लाभ होते हैं। आहार रेशों में पानी सोखने की प्रवृत्ति होती है और ये फूलने (बल्किंग) वाले एजेंट के रूप में कार्य करता है। यह आमाशयांत्र प्रणाली में भोजन की तेज गति को प्रेरित करता है तथा बड़ी आंत में मल के जमा होने की अवधि को कम करता है। यह पित्त लवण से

जुड़कर कॉलेस्ट्रॉल की कमी में वृद्धि लाता है तथा हाइपो कॉलेस्ट्रेमिक एजेंट के रूप में कार्य करता है। इसलिए इसका इस्तेमाल हृदय–रक्तवाहिका तंत्र रोगों में लाभदायक होता है। चावल में अन्य अनाजों की तुलना में सबसे कम आहार रेशे होते हैं। चावल, मक्का या गेहूँ की तुलना में मोटे अनाजों के बीज का फाँक या छिलके में पॉलीफेनोल और आहार रेशा प्रचुर मात्रा में होता है। वे टाइप 2 मधुमेह के कम जोखिम में मदद कर सकते हैं।

मानव आहार में कैल्शियम का महत्वः

एशिया और अफ्रीका की महिलाओं में कैल्शियम का अंतर्ग्रहण प्रस्तावित मात्रा से कम है। गर्भावस्था और स्तनपान के दौरान महिलाओं में कैल्शियम की कमी होने से बच्चों की हड्डियाँ कमजोर हो जाती है। इसके अलावा गर्भावस्था के दौरान अपर्याप्त कैल्शियम लेने से माँ का स्वास्थ्य कमजोर हो जाता है, इस दौरान माँ की हड्डियों के कैल्शियम का इस्तेमाल भ्रूण के विकास और स्तन दुग्ध के निर्माण में होने लगता है। कैल्शियम की कमी के कारण माँ की संचरण प्रणाली पर बुरा असर पड़ता है और उच्च रक्तचाप की समस्या पैदा होती है।

गर्भावस्था के दूसरे अर्धावधि में कैल्शियम का पूरक आहार देने से गर्भावस्था से उत्पन्न उच्च रक्तचाप और प्री–एक्लेम्पिसया की घटनाओं में कमी आती है। यदि हम मोटे अनाज, रागी और ज्वार के पोषण मानों का विश्लेषण करें, तो पाएंगे कि इनमें कैल्शियम प्रचुर मात्रा में होती है।

मोटे अनाज का पोषण मान (खाद्य हिस्से का 100 ग्रा)

भोजन का नाम	ऊर्जा (किलो कैलोरी)	कैल्शियम (मिली ग्राम)	लौह तत्व (मिली ग्राम)
ज्वार	329	25	5.4
बाजरा	363	42	11.0
मक्का	358	26	2.7
रागी	336	350	3.9

मोटे अनाज पर आधारित प्रसंस्कृत भोजन

मक्का, ज्वार और अन्य मोटे अनाज का उत्पादन भारत के कुल खाद्य उत्पादन का एक चौथाई है तथा यह देश की अर्थव्यवस्था में अहम योगदान देता है। इसके अलावा पारंपरिक पाकविधियों में मोटे अनाजों का इस्तेमाल शिशु आहार बनाने वाले उद्योग तथा अन्य खाद्यपदार्थों के उत्पादन में किया जाता है। ज्वार का इस्तेमाल ग्लुकोज और अन्य पेय निर्माण उद्योग में किया जाता है। अब रागी और गेहूँ के मिश्रण से निर्मित वर्मिसेली बाजार में उपलब्ध है, जिसे खाने के लिये तैयार भोजन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

विकासशील देशों में कुपोषण एक बड़ी समस्या है, जिसके परिणामस्वरूप कई रोग और बच्चों में कम आईक्यू होता है। मस्तिष्क का विकास मुख्य रूप से गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माँ के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है, कि आखिरकार माँ के आहार की गुणवत्ता क्या है। इसी तरह, भोजन शिशुओं, बढ़ते बच्चों, पुरुषों, महिलाओं, और वृद्धों के सामान्य स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सही खाद्य पदार्थों में शरीर के कार्यों के अच्छे स्वास्थ्य, इम्युनो–मॉड्यूलेटिंग और बीमारियों के खिलाफ रोकथाम की शक्ति होती है, जिस तरह गलत खाद्य पदार्थ बीमारी, तेजी से उम्र बढ़ने और समय से पहले मौत का कारण बन रहे हैं। पर्यावरण और आहार संबंधी कारक यानी खराब पोषण की आदतें विभिन्न बीमारियों के लिए सह–कारकों में से एक हैं। कुपोषण और संबंधित रोगों से निपटने के लिए, स्वस्थ खाद्य पदार्थ कार्यात्मक खाद्य पदार्थों के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इनमें से कई मूल्य वर्धित स्वास्थ्य खाद्य पदार्थ पोषण युक्त खाद्य पदार्थ और न्यूट्रास्यूटिकल के रूप में उपलब्ध हैं। पोषण युक्त खाद्य पदार्थ और न्यूट्रास्यूटिकल स्वास्थ्य को बेहतर बनाने, स्वास्थ्य देखभाल की लागत को कम करने और ग्रामीण समुदायों में आर्थिक विकास का समर्थन करने का अवसर प्रदान करते हैं और इस बात के प्रमाण बढ़ रहे हैं कि 21वीं सदी के वैश्विक खाद्य उद्योग में न्यूट्रास्यूटिकल क्रांति लाने जा रहे हैं। कुछ उत्पादकों को अपनी कृषि आधारित फसलों में विविधता लाने का एक तरीका भी प्रदान करते हैं। बाजार के आंकड़ों के अनुसार, वैश्विक पोषण युक्त भोजन और न्यूट्रास्यूटिकल बाजार एक ऐसी दर से बढ़ रहा है जो पारंपरिक प्रसंस्कृत खाद्य बाजार की जगह ले रहा है। उपभोक्ताओं को खाद्य पदार्थों के स्वास्थ्य लाभ में रुचि तेजी से बढ़ रही है और रोगों की रोकथाम और कई खाद्य पदार्थों में निहित स्वास्थ्यवर्धक यौगिकों को भोजन के मूल पोषण लाभों से देखना शुरू कर दिया है। यह एक अधिक व्यापक समझ के साथ संयुक्त है कि आहार रोग तथा स्वास्थ्य देखभाल की लागतों को कैसे प्रभावित करता है। उपभोक्ता खाद्य प्रणाली की सुरक्षा और गुणवत्ता में वृद्धि और कृषि–खाद्य क्षेत्र के पर्यावरण के प्रदर्शन को बढ़ाना चाहते हैं। प्रांत और समुदाय कृषि के लिए आर्थिक विकास के अवसरों की तलाश कर रहे हैं। इन माँगों ने वैज्ञानिक उत्कृष्टता के आधार पर एक नवाचार श्रृंखला बनाई है।

नैनो जैव प्रौद्योगिकी द्वारा न्यूट्रास्यूटिकल्स का विकास तथा संर्वधन

आधुनिक विज्ञान की नई विधाओं जैसे जैव प्रौद्योगिकी तथा नैनो प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर मोटे अनाजों से न्यूट्रास्यूटिकल्स का विकास तथा संर्वधन त्वरित गति से करके मूल्य वर्धित उत्पाद निर्मित किये जा सकते हैं। जैव प्रौद्योगिकी के अर्न्तगत विभिन्न तकनीकों का उपयोग सजीवों उनके तन्त्रों तथा प्रक्रियाओं को विभिन्न पदार्थों के उत्पादन हेतु उपयोग में लिया जाता है। नैनो प्रौद्योगिकी के अर्तगत 100 नैनोमीटर से छोटे पदार्थों का कार्य किया जाता है। नैनो आकार के पदार्थों के विशिष्ट गुण तथा स्वभाव के कारण कई ऐसे अनुप्रयोग किये जा सकते है जो सामान्य दशा में सम्भव नहीं होते। जैव प्रौद्योगिकी ने डॉक्टरों और वैज्ञानिकों को किसी व्यक्ति के डीएनए का विश्लेषण करने और यह निर्धारित करने में सक्षम किया है कि उस विशिष्ट व्यक्ति के लिए क्या पोषक तत्व सबसे प्रभावी होंगे। आहार और पोषण की खुराक के माध्यम से, अब लोगों को अपनी आनुवंशिक क्षमता को अधिकतम करना और कुछ स्वास्थ्य समस्याओं से बचना संभव है।

हमनें पालक और हल्दी से नैनोकणों के संश्लेषण को सफलतापूर्वक अंजाम दिया है जो लोहे की कमी या एनीमिया, ऑस्टियोपोरोसिस और मधुमेह आदि की समस्या को हल करने की अपार संभावना रखते हैं। यह महसूस किया जा रहा है कि नैनो–जैव सूचना प्रौद्योगिकी में इस तरह के रणनीतिक हस्तक्षेप अत्यधिक उत्पादक और पोषक फसलों की किस्मों, मूल्य वर्धित उत्पादों और पोषक तत्वों वाले खाद्य उत्पादों के विकास का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

मोटे अनाजों का पुर्नउत्पादन : समय की आवश्यकता

भारत, दुनिया में मोटे अनाजों का सबसे बड़ा उत्पादक है। सरकार पोषण सुरक्षा हासिल करने के लिये मिशन स्तर पर रागी और ज्वार जैसे मोटे अनाजों की खेती को प्रोत्साहित कर रही है। बाजरा, जिसे कि पोषक अनाज कहा जाता है, को समर्थन मूल्य पर खरीदा जा रहा है और इसे मध्यान्ह भोजन योजना और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) के तहत शामिल किया जा रहा है। पोषण सुरक्षा प्राप्त करने के लिये मोटे अनाजों की खेती को बढ़ावा देने के प्रयास किये जा रहे हैं। मोटे अनाजों का रकबा बढ़ाने के उद्देश्य से वर्षा सिंचित क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फसलों को बढ़ावा देने के लिये पंचवर्षीय योजना के तहत मोटे अनाजों के उपभोग की माँग बढ़ाने के प्रयास किये जा रहे हैं। विभिन्न कार्यक्रमों के तहत मोटे अनाजों के पोषण और स्वास्थ्य लाभों पर बुन्देलखण्ड के ग्रामीण और शहरी लोगों के बीच जागरूकता बढ़ाने का भी प्रयास किया जा रहा है।

निष्कर्षः

मोटा अनाज : भविष्य की फसल

मोटा अनाज विविध एवं विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल है जैव विविधता को समृद्ध करने के साथ–साथ भोजन में औषधीय गुणों को शामिल करने में सहायक होता है। जलवायु परिवर्तन के परिपेक्ष्य में भी मोटा अनाज महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह गरीब किसानों को जलवायु परिवर्तन से होने वाले नुकसान के अनुकूल है। जो किसान मोटे अनाजों से दूसरे फसलों की तरफ स्थानांतरित हो गये थे उनके स्थिर कटाई, आसान फसल उत्पादन, सूखा प्रतिरोधकता, मूल्य संवर्धन हेतु विधियों एवं सुनिश्चित बाजार के माध्यम से पुनः इसकी खेती के लिए प्रेरित कर सकते हैं। उन्नत मोटा अनाज उत्पादन एवं खपत किसानों को कुपोषण एवं पोषण सम्बन्धी विकारों जैसे एनीमिया एवं बढ़ती जीवन शैली के विकार (मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि) से निजात दिलाने में सहायक हो सकते हैं।

किसान का जीवन सबसे आदर्श जीवन होता है जिसमें परिश्रम, त्याग और संतोष होता है।

*****

भारतीय किसान के जीवन सत्र और उनके परिश्रम में बड़ा अंतर होता है। वे जितना मेहनत करते हैं, उसका उन्हें उचित मूल्य नहीं मिलता है। इनकी समस्या का मुख्य कारण अशिक्षा है। इसके प्रति किसान खुद को और आने वाली पीढ़ियों को शिक्षित करें और कृषि में व्यापारिक सम्भावना की तलाश करें।

कदन्न फसलें व नमी संरक्षण : जलवायु परिवर्तन द्वारा उत्पन्न सूखे से बचाव की दिशा में एक कदम

राज पाल मीना[1], सूरज गोस्वामी[2], अंकिता झा[3], कर्णम वेंकटेश[4] एवं विष्णु कुमार[5]

सारांश : वर्तमान में संरक्षण खेती व कम संसाधन से अधिक उपज लेना कृषि से जुड़े अनुसंधानों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। कम पानी के साथ अधिक भोजन का उत्पादन विशेष रूप से शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए एक बड़ी चुनौती है। भूमंडलीय ऊष्मीकरण और बदलते वर्षा स्वरूप के परिणामस्वरूप वाष्पीकरण–वृद्धि के कारण भूजल स्तर तेजी से घट रहा है और सतह का पानी भी घट रहा है। आजकल, कृषि में जल प्रबंधन पर ध्यान देने और विचार करने की आवश्यकता है। हमारे पास पानी का मूल स्रोत एक मात्र वर्षा है, लेकिन पिछले एक दशक से वर्षा में अनिश्तिता एवं अनियमितता का रुख देखने को मिल रहा है (कभी सूखा, कभी बाढ़, असामयिक वर्षा इत्यादि) जबकि कृषि की सफलता पानी की उपलब्धता पर ही निर्भर करती है।

प्रस्तावनाः

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसन्धान संस्थान, करनाल के पास उपलब्ध मौसम सम्बन्धी आंकड़े से ज्ञात होता है कि वर्ष 1972 से वर्ष 2015 की अवधि के दौरान वर्षा के दिनों की संख्या में 22 प्रतिशत की कमी आई है। वर्षा वितरण का स्वरूप भी बदल गया है, दक्षिण–पश्चिम मानसून के मुख्य महीने जुलाई में बरसात के दिनों में पचास प्रतिशत की कमी आई, वहीं अगस्त के अगले महीने में 25 प्रतिशत वर्षा के दिनों की संख्या में कमी हुई है। इसी तरह सर्दियों के महीनों (जनवरी और दिसंबर) में 25–50 प्रतिशत की कमी और गर्मियों की बारिश में 25 प्रतिशत कमी आई है। लम्बे समय तक चलने वाली फुहार (बूंदाबांदी) वर्षा, कभी–कभी एवं कम समय में होने वाली मूसलाधार वर्षा में बदल गई है, जिसके विपरित प्रभाव अधिक होते हैं। वातावरण में आपेक्षिक आर्द्रता (नमी) कम हो गई है। हालांकि वैश्विक जलवायु को प्रभावित करने में वृहत् (बड़े) कारकों की प्रमुख भूमिका है, लेकिन क्षेत्रीय या उससे भी छोटे स्तर पर पर्यावरणीय परिस्थितियाँ संशोधित होती हैं। हाल के वर्षों में वृहत् कारकों में बदलाव एवं जलवायु परिवर्तन के कारण सभी कृषि गतिविधियों और उत्पादकता पर दुष्प्रभाव पड़ा है। कृषि में अपनाई जाने वाली गहन प्रबंधन व्यवस्था के कारण लगभग सभी फसलों की उत्पादकता में वृद्धि हुई है। कृषि प्रबंधन में एक और उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है, पूरे वर्ष फसल चक्र या उत्पादन चक्र का विस्तार, जिसके कारण पानी की आवश्यकता कई गुना बढ़ गई है और मानसून की थोड़ी सी भी विफलता फसलों पर विनाशकारी प्रभाव डालती है। यह पहले की स्थितियों के विपरीत है, जहाँ न्यूनतम फसल की हमेशा निश्चितता रहती थी। अधिक मुनाफा कमाने के लिए, जब किसानों ने गहन खेती करना शुरू किया, तब किसानों ने कभी नहीं सोचा था कि गहन खेती लम्बे समय तक टिकाऊ नहीं होगी।

सूखा या सूखे जैसी परिस्तिथियाँ हमेशा ही मंडराती रहती है। लेकिन मानसून के आने के साथ ही सूखे की मार अतीत की बात बन जाती है। हर कोई (किसान, सम्बंधित अधिकारी, सरकार) अगली गर्मियों तक इस अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या को भूल जाते हैं। हर किसी को समस्या से निपटने के लिए प्रयास करने पड़ेंगे तथा छोटे से छोटे प्रयास सूखे और बाढ़ की स्थिति के प्रबंधन में मदद करेंगे। इस प्रकार के सकारात्मक प्रयास की आवश्यकता समुदाय स्तर पर होगी।

दो महत्वपूर्ण कारक हैं जो सिंचाई के कारण फसल उत्पादन को प्रभावित करते हैं : पहला फसल द्वारा पानी की आवश्यकता एवं दूसरा जल प्रबंधन। पहले कारक हेतु कम पानी की आवश्यकता वाली अन्य फसलों का उपयोग करके किया जा सकता है एवं इनमे बढ़ती आबादी की आहार पूर्ति की भी क्षमता होनी चाहिए। विभिन्न कदन्न को अन्य अनाज फसलों की तुलना में कम पानी की आवश्यकता होती है।

बढ़ती हुई जनसंख्या की भोजन पूर्ति एवं जलवायु परिवर्तन और भूमंडलीय ऊष्मीकरण के प्रभाव से मुकाबला को देखते हुए, कदन्न का उत्पादन करने हेतु जोर दिया जा रहा है। विभिन्न कदन्न को सूखे और गर्मी प्रतिरोधक के रूप में भी माना जाता है जो पानी की कमी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त व् वरदान साबित हुए हैं। ज्वार एक प्रकार का कदन्न है जो चारे के रूप में और ईंधन के उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है। फसल हेतु जल का उपयोग, सिंचाई की आवश्यकता, मिट्टी की नमी के आरक्षित उपयोग और बिना जुताई व शून्य जुताई प्रबंधन एवं वर्षा जल को अधिकतम

[1–4] *भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसन्धान संस्थान, करनाल*
[5] *रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी*

समय तक धरती में बनाए रखना कुशल जल प्रबंधन अभ्यासों में से एक है। सारणी 1 में विभिन्न फसलों द्वारा उपयोग किये जाने वाले जल की मात्रा का उल्लेख किया गया है। सारणी 1 में दिखाए आंकड़े इस बात की पुष्टि भी करते हैं कि उनके पास पानी के उपयोग की महान दक्षता भी है।

कम पानी की माँग वाली फसल के साथ सटीक जल प्रबंधन का उपयोग करना पानी की कमी के मुद्दे को हल करने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकता है। यह सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए एक मजबूत उपकरण प्रदान करते हुए शुष्क तथा अर्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए भी फायदेमंद हो सकता है।

सारणी 1 : विभिन्न फसलों द्वारा प्रयोग की जाने वाली जल की मात्रा

फसल	प्रभावी जड़ क्षेत्र	फसल की जल माँग (मिलीमीटर)	जल उपयोग की दक्षता (कि.ग्रा.है.मिमी..)
चावल	उथली (60 से.मी.)	1200	3.7
मक्का	गहरी (120 से.मी.)	625	8.0
ज्वार	गहरी (120 से.मी.)	500	9.0
बाजरा	गहरी (120 से.मी.)	500	8.0

स्रोत : राव और राणा (1987)

पौधों का घनत्व, पंक्ति रिक्ति, जीनोटाइप, शेड्यूलिंग और सिंचाई की विधि जैसे विभिन्न कृषि सम्बन्धी प्रबंधन जल का उचित उपयोग करने में सहायता प्रदान कर सकती है। अच्छी फसल के लिए अलग–अलग नमी संरक्षण के सुझाव दिए गए हैं जैसे, गहरी जुताई, रिज और फरो सिस्टम और देशी खाद जैसे कि गोबर की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट, फसल अवशेष इत्यादि का उपयोग।

फसल के पानी के उपयोग को बढ़ाने के लिए विभिन्न जल प्रबंधन अभ्यास हैं जैसे की मृदा में जल धारण शक्ति को बढ़ाना या मृदा की सतह से जल का दोहन कम करना। उदाहरण स्वरूप पलवार का प्रयोग भूमि से जल का सीधा वाष्पोत्सर्जन को रोकता है एवं विभिन्न प्रकार की जुताई विधियाँ मिटटी में जल धारण शक्ति को बढ़ाती है और पानी की कमी को कम करती है। यह भी पाया गया है कि अपलवारित मिट्टी की तुलना में पलवार से ढकी मिट्टी में ज्वार की अधिक पैदावार होती है और साथ ही सिंचाई के पानी की 15 प्रतिशत बचत भी होती है। जुताई के अभ्यास से मिट्टी की जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है। बाजरा उत्पादन के साथ स्थानिक नमी संरक्षण के इस सिद्धांत को शामिल करना पानी के अभाव वाले क्षेत्रों के लिए एक उत्कृष्ट उपकरण हो सकता है। मृदा प्रोफाइल में वर्षा जल को सरंक्षण करके मिट्टी की नमी को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रबंधन पद्धतियां भी हैं, जिसका सिद्धांत है बहते हुए जल को चलाना, चलते हुए जल को रोकना तथा रुके हुए जल को मृदा में संरक्षण करना।

इस सिद्धांत व नमी संरक्षण तकनीकों को बेहतर तरीके से समझने और लागू करने के लिए इनका अगले अनुभाग में विवरण दिया गया है।

सिद्धांत 1: बहते हुए जल का चलने के लिए प्रबंधन

उक्त शीर्षक या वाक्यांश का अर्थ स्पष्ट है, बहते हुए जल की गति को कम करने के लिए कृषि कार्य एवं प्रबंधन करने होंगे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वर्षा जल के प्रवाह को किसी भी प्रकार की रुकावट बनाकर प्राप्त किया जा सकता है। रुकावट का प्रकार क्षेत्र विशेष या खेत विशेष के लिए भिन्न हो सकते हैं, जिसका निर्णय वहाँ की स्थानीय परस्थितियाँ करती हैं।

प्रकृति इसे व्यापक रूप से पेड़ों, झाड़ियों और जड़ी–बूटियों की जड़ प्रणाली के माध्यम से करती है। इसलिए हमें प्रकृति का अनुसरण करना होगा। खेत की सीमा या खेत के किनारे एक तीन

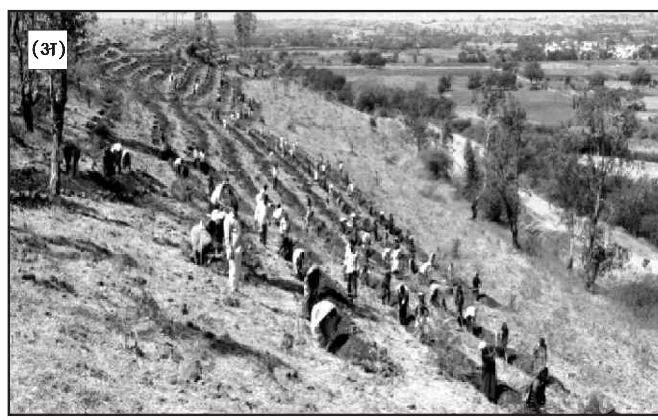

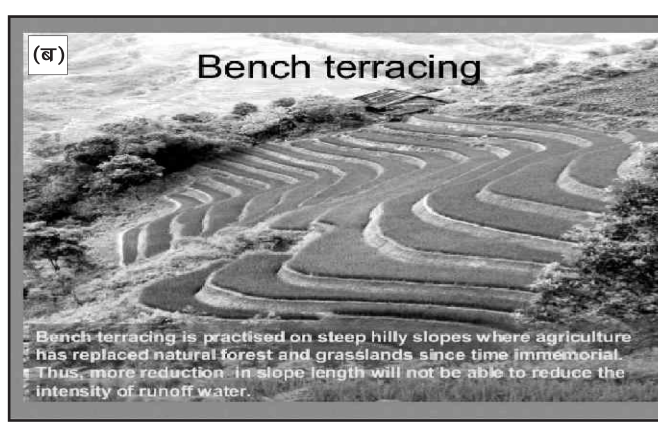

चित्र–1 : (अ) पहाड़ी क्षेत्रों में समोच्च खाई, (ब) वनस्पति सीढ़ीनुमा खेत

स्तरीय वानस्पति दीवार का निर्माण करना होगा ताकि सूरज की तेज किरणों, तेज हवा से पर्याप्त सुरक्षा सुनिश्चित हो सके, ताकि वाष्पीकरण–वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाले जल के नुकसान को न्यूनतम किया जा सके। यह वानस्पतिक दीवार न केवल मल्चिंग एवं कम्पोस्ट, पोषक तत्व के लिए पर्याप्त हरी पदार्थ उपलब्ध कराती है, बल्कि कीटों और बीमारियों के विरुद्ध भी कारगर साबित होते है। पहाड़ी इलाके में, समोच्च ट्रेंचिंग (चित्र–1 अ) का उपयोग, सीढ़ीनुमा खेतों के साथ वनस्पति (चित्र–1 ब), या किसी भी अन्य उपयुक्त यांत्रिक संरचनाओं का उपयोग करके बहते हुए जल की गति को कम किया जा सकता है। यह सभी इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रभावी साधन हो सकते हैं।

सिद्धांत 2ः चलते हुए जल को रोकने के लिए प्रबंधन

यहाँ, हमारा मकसद मृदा की गहरी परतों में जल को संग्रहित करना है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए खेतों में अधिक से अधिक वर्षा जल को मृदा की गहरी परतों में समावेश/रिसना/अंतः स्पदंन की प्रकिया द्वारा एकत्रित करना होगा। इसके लिए खेतों में कठोर परत के ऊपर पर्याप्त मृदा होना आवश्यक है। हमें यह याद रखना चाहिए कि खेती योग्य उपरी सतह की एक इंच मिट्टी को प्रकृति द्वारा बनाने में हजार वर्ष लगते हैं और अत्यधिक मानव हस्तक्षेप या अनुपयुक्त कृषि गतिविधियों के कारण कुछ ही वर्षों में इसे नष्ट किया जा सकता है। मानसून से पहले गर्मी की गहरी जुताईयां मानसून अवधि के दौरान मृदा परतों में अधिकतम पानी के भंडारण के लिए विश्वसनीय तकनीक है। गहरी जुताई कठोर मृदा की कठोर परतों को तोड़ देती है जिससे, पानी मृदा में तेजी से समा जाता है और इधर–उधर बहकर व्यर्थ नही होता। मृदा प्रोफाइल में जल संरक्षण या जल संचय के अलावा, ग्रीष्मकालीन जुताई कृषि में प्राकृतिक कीट, रोग, खरपतवार नियंत्रण का एक उत्तम साधन भी है।

जहाँ खेतों में ढलान अधिक हो या पहाड़ी क्षेत्रों में, वर्षा जल को रोकने के लिए छोटे–छोटे पिट (गड्ढे) बना लेना चाहिए ताकि पानी इनमें रुक सके तथा मृदा की गहरी परतों में समाने के लिए अधिक समय मिल सके। पानी के गड्ढों को एक उपयुक्त आकार में बनाया जा सकता है। 2' × 2' × 2' और लगभग 100–150 पिट एक हेक्टेयर खेत में बनाई जा सकती है। गड्ढ़ों या पिट्स की संख्या खेत की वास्तविक स्थिति पर निर्भर करती है। सतर्कता भी बरतने की आवश्यकता है, अगर खेत में ढलान अधिक है तो ऐसी दशा में, अधिक गढ्ढे बना लेने से अधिक जल एकत्रित हो सकता है और भूस्खलन भी हो सकती है।

सिद्धांत 3ः रूके हुए जल को मृदा (खेत) में संरक्षण

इसका तात्पर्य यह है कि वर्षा जल ऊर्जा (उर्जा जो जल को इधर–उधर बहाने एवं मृदा क्षरण के लिए जिम्मेदार होती है) वह खत्म हो चुकी होती है। अब वर्षा जल का मृदा की गहरी परतों में समावेश/अंतः स्पदंन तेजी से हो सके इसके लिए खेत को उपयुक्त तरीके से तैयार किया जाता है। वर्षा जल संरक्षण के लिए, खेत के एक भाग में कुआँ, चेक डैम, उथला डाइक, तालाब (चित्र–2 अ) या पॉलीथीन आवरणयुक्त भंडारण तालाब (चित्र–2 ब), टैंक इत्यादि बनाए जा सकते हैं। संग्रहित पानी का उपयोग फसल उत्पादन के लिए सिंचाई, पशुओं के पीने या अन्य कार्यों के लिए विवेकपूर्ण रूप से उपयोग किया जा सकता है।

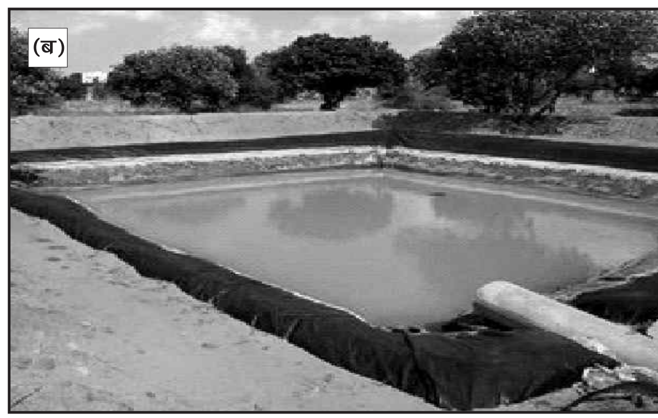

चित्र–2 : (अ) जल संग्रहण के लिए तालाब का निर्माण (ब) पॉलीथीन के उपयोग से तालाब का सुदृढीकरण।

संग्रहित वर्षा जल का विवेकपूर्ण उपयोग

पारंपरिक तरीकों से सिंचाई करने में पानी की अधिक मात्रा एवं अधिक श्रम की आवश्यकता होती है, इसलिए सिंचाई के आधुनिक तरीकों का उपयोग करके संग्रहित वर्षा जल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाना चाहिए। सिंचाई के आधुनिक तरीकें/प्रणाली जैसे, ड्रिप, स्प्रिंकलर, माइक्रो–स्प्रिंकलर, रेन–गन, मिस्ट या फॉगर आदि से जल उपयोग दक्षता बढ़ जाती है और इस प्रणाली से सिंचाई के साथ अन्य रसायनों जैसे उर्वरक,कीटनाशक इत्यादि का प्रयोग भी बिना किसी अतिरिक्त श्रम के किया जा सकता है। सूखे घास/फसल अवशेष/वृक्ष के पत्तों या अन्य कृषि उत्पाद के साथ खेत की मल्चिंग (पलवार) करने से मिट्टी की नमी का नुकसान कम हो जाता है। जैविक खाद जैसे कि गोबर की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट खाद, पेड़ों की पत्तियाँ आदि का उपयोग मिट्टी की ह्यूमस की मात्रा को बढ़ाता है, जो मिट्टी की जल धारण एवं जल अवशोषण क्षमता को बढ़ाता है।

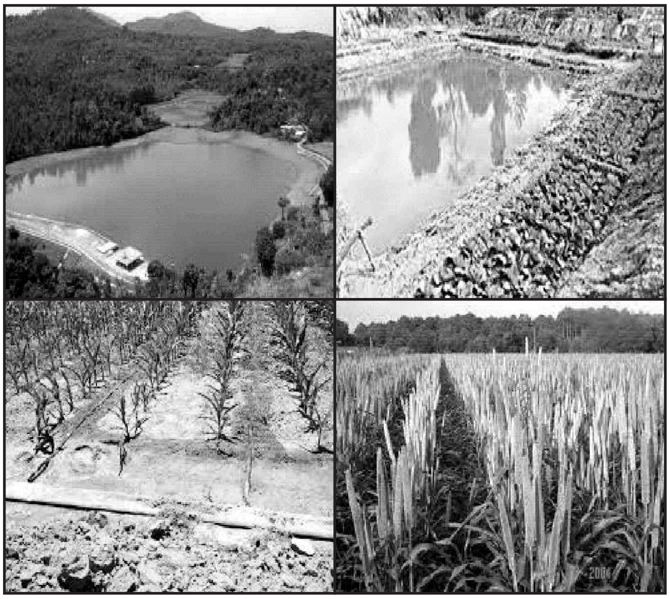

निष्कर्षः

इससे पहले कि जल फिर से जल विज्ञान चक्र का भाग बन जाये इसके दौरान अलग–अलग नुकसान से बचने के लिए वर्षा जल का सीधा उपयोग करना बेहतर होता है। वर्षा जल एक अपरिहार्य स्रोत है जिसे किसी भी कीमत पर संरक्षित करने की आवश्यकता है। हम इसे व्यक्तिगत और सामुदायिक दोनों स्तरों पर शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में संरक्षित कर सकते हैं। जन भागीदारी एक बड़े स्तर पर पानी की आवाजाही सुनिश्चित करेगी जो हमें इस विकट समस्या से छुटकारा दिलाएगी। कदन्न उत्पादन के साथ उल्लिखित तकनीकों का उपयोग करके कम जल उपयोग के साथ कदन्न उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। जल संरक्षण तकनीकों के साथ कम पानी की माँग वाली फसल का चयन हमें जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों का प्रतिरोध करने में एक बेहतर साधन बन सकता है।

उठो, जागो और तब तक मत रूको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाये।

✱✲✱✲✱

तुम्हें कोई पढ़ा नहीं सकता, कोई आध्यात्मिक नहीं बना सकता। तुमको सब कुछ अंदर से सीखना है। आत्मा से अच्छा कोई शिक्षक नहीं है।

✱✲✱✲✱

ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियाँ पहले से हमारी है। वो हम ही है जो आँखों पर हाथ रख लेते है और फिर रोते है कि कितना अंधकार है।

✱✲✱✲✱

विश्व एक विशाल व्यायामशाला है जहाँ हम खुद को मजबूत बनाने के लिए आते है।

✱✲✱✲✱

शक्ति जीवन है, निर्बलता मृत्यु है। विस्तार जीवन है, संकुचन मृत्यु है। प्रेम जीवन है, द्वेष मृत्यु है।

✱✲✱✲✱

किसी दिन, जब आपके सामने कोई समस्या न आये – आप सुनिश्चित हो सकते है कि आप गलत मार्ग पर चल रहे है।

✱✲✱✲✱

'जब जक जीना, तब तक सीखना' – अनुभव ही जगत में सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है।

लघु अन्न फसलों की महत्ता व उन्नत प्रजातियाँ

शैलेज सूद

सारांश : हमारा देश विविधताओं का देश है तथा यहाँ पर विविध प्रकार की फसलें उगायी जाती हैं जोकि क्षेत्रीय आवश्यकताओं को देखते हुए वहाँ की खाद्य तथा पोषण सुरक्षा को पूरा करती है। भारत में असिंचित अवस्था में बोई जाने वाली फसलों में लघु अन्न का मुख्य स्थान है। लघु अन्न एक फसल समूह है जिसमें मंडुवा (रागी), मादिरा (झंगोरा), कौनी, चीना आदि बारीक दाने वाली फसलें सम्मिलित हैं। इन फसलों को मुख्यतः असिंचित परिस्थितियों में बोया जाता है। निम्न उर्वरता वाली भूमि में भी इनकी उपज क्षमता बनी रहती है। खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से लघु अन्न फसलें एक महत्वपूर्ण फसल समूह हैं। ये फसलें मुख्य रूप से खरीफ ऋतु में उगायी जाती है।

प्रस्तावना

विश्व भर में लघु अन्न फसलों का महत्व दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है। विश्व खाद्य संस्थान के एक अनुमान के अनुसार जैव विविधता में अब तक लगभग 75 प्रतिशत ह्रास हो चुका है। केवल कुछ ही फसलों के उत्पादन में वृद्धि तथा उन पर निर्भरता मानव सभ्यता के लिये संकट की स्थिति उत्पन्न कर सकती है। वर्तमान में हो रहे जलवायु परिवर्तन एवं समस्याग्रस्त भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि, लघु अन्न फसलों के चुनाव एवं संरक्षण के महत्व को दर्शाती है, जो कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मानव के जीवनयापन के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

खाद्य सुरक्षा, पोषण सुरक्षा एवं विभिन्न त्यौहारों एवं संस्कृति से जुड़े होने के कारण ये फसलें (अन्य फसलों की तुलना में) बहुत उपयोगी एवं हमारी अमूल्य धरोहर हैं, जिनको आने वाली पीढ़ियों के लिये संरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है।

वर्षाश्रित क्षेत्रों के लिये इन फसलों का विशेष महत्व है क्योंकि

- ❖ हिमालयी क्षेत्र इनके उद्भव का एक मुख्य केन्द्र माना गया है तथा पर्यावरण एवं पोषण सुरक्षा की दृष्टि से भी यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
- ❖ ये फसलें वर्षाश्रित क्षेत्रों के कठिन वातावरण में उगायी जाती हैं तथा ये पोषक तत्वों के लिए सस्ता एवं सुलभ स्रोत हैं। खाद्य प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान द्वारा किये गये विश्लेषणों से पता चलता है कि लघु अन्न फसलें विविध पोषक पदार्थों से भरपूर हैं।
- ❖ इन फसलों में अधिक रेशा होने के कारण, इनका सेवन मधुमेह तथा हृदय रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिये लाभदायक है।
- ❖ लघु अन्न फसलों में सूखा सहन करने की क्षमता अधिक होती है तथा इन फसलों की खेती वर्षाश्रित दशा में कम उपजाऊ वाली भूमि पर की जा सकती है जहाँ पर भी ये भरपूर पैदावार देती है।
- ❖ वर्तमान परिवेश में जब मौसम काफी असामान्य हो गया है तब इन फसलों की उपयोगिता बढ़ जाती है। इन फसलों में बदलते पर्यावरणीय माहौल में अपने को ढालने की अपार क्षमता है।
- ❖ इनमें रोगों एवं कीटों की समस्या भी कम होती है, जिसके कारण विषम परिस्थितियों में भी यह फसलें कुछ न कुछ उपज देने में सक्षम होती हैं।
- ❖ इन फसलों से उच्च गुणवत्तायुक्त चारा मिलता है जिसकी प्रायः हमारे देश में कमी है।

प्रकृति के साथ अनुकूलता एवं वर्तमान समय में इन फसलों की बढ़ती माँग वर्षाश्रित क्षेत्रों के किसानों के आर्थिक स्वावलम्बन की दिशा में एक मील का पत्थर साबित हो सकती है।

लघु अन्न फसलों का पोषण में महत्व

वर्षाश्रित क्षेत्रों में उगायी जाने वाली परम्परागत फसलें पोषक तत्वों के लिहाज से अत्यन्त धनी व गुणकारी हैं। जैसा कि निम्न तालिका से विदित है कि चीना, कौणी/कौनी, आदि में चावल एवं गेहूँ की तुलना में ज्यादा प्रोटीन एवं मंडुवा के दानों में कैल्शियम, चावल की तुलना में कई गुना अधिक पाया जाता है।

भाकृअनुप–केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान,
शिमला (हि.प्र.)

तालिका.1: लघु अन्न फसलों में पोषक तत्व (ग्राम प्रति 100 ग्राम दाना)

फसल	नमी प्रतिशत	प्रोटीन	वसा	खनिज	रेशा	कार्बोहाइड्रेड	ऊर्जा कैलोरी/ 100 ग्राम
मंडुवा	12.4	7.3	1.3	2.7	3.6	72.0	328
मादिरा	11.1	6.2	2.2	4.4	9.8	65.5	309
चीना	11.5	12.5	3.5	1.9	5.2	63.8	354
कौणी / कौनी	11.9	11.2	4.0	3.3	6.7	63.2	351
चावल	12.5	6.8	0.5	0.7	0.2	78.2	345
गेहूँ	12.6	11.8	1.5	1.5	1.2	71.2	346

स्रोत– मलेशी 2001

मंडुआ तथा मादिरा में चावल की तुलना में अधिक प्रोटीन एवं संतुलित अमीनों अम्लों की मात्रा होती है जो कि इन्हें चावल की तुलना में ज्यादा उपयोगी खाद्य पदार्थ बनाते हैं। साथ ही इनमें मिथियोनिन एवं लाइसिन जैसे आवश्यक अमीनों अम्ल तथा विटामिन जैसे थायमिन, राईबोफ्लेविन, लौह तथा नियासिन आदि भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होते है। मंडुआ तथा मादिरा में पाये जाने वाले रेशे की मात्रा घुलनशील गोंद, बीटा ग्लूकोन, शर्करा, कोलेस्ट्रोल के उपापचय को बेहतर बनाते हैं। मंडुवा से बनाये जाने वाले खाद्य पदार्थों का ग्लाईसेमिक सूचकांक कम होता है। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि नियमित मंडुवा के सेवन से मधुमेह जैसे रोगों को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कृषि विश्वविद्यालय, बंगलौर एवं सी.एफ.टी.आर. आई., मैसूर द्वारा मंडुवे से मधुमेह रोगियों के लिये कई खाद्य उत्पाद बनाये गये हैं।

मंडुवे की पौष्टिकता को देखते हुए सी.एफ.टी.आर.आई., मैसूर ने इससे बेबीफूड बनाने की विस्तृत तकनीक विकसित की है। इसी तरह एम.एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन ने भी लघु अन्न अनाजों को बेबीफूड में शामिल करने के लिये शोध किया है तथा बच्चों की आयु के हिसाब से मंडुवे की मात्रा देने की विस्तृत जानकारी प्रदान की है।

वर्षाश्रित क्षेत्रों के लिये लघु अन्न फसलों की उन्नतशील प्रजातियाँ:

विवेकानन्द पर्वतीय क्षेत्रों कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा तथा अन्य संस्थानों के द्वारा वर्षाश्रित क्षेत्रों में मंडुवा तथा मादिरा की कई उन्नतशील प्रजातियाँ विकसित की गयी हैं। इन प्रजातियों में स्थानीय किस्मों की तुलना में ज्यादा पैदावार प्राप्त की जा सकती है। साथ ही ये प्रजातियाँ सभी प्रमुख रोगों के लिये सहिष्णु या प्रतिरोधी है। इन प्रजातियों का विवरण एवं उनके विशिष्ट गुणों का उल्लेख नीचे किया गया है।

मंडुवा

वी.एल. मंडुवा-149: यह अधिक उपज देने वाली (25–35 कुन्तल प्रति हेक्टेयर) झौंका रोगरोधी किस्म है। वर्ष 1991 में इस किस्म को पूरे देश (तमिलनाडु व आन्ध्र प्रदेश को छोड़कर) के लिए अनुमोदित किया गया था। इस किस्म का विकास वी.एल. मंडुवा 204 एवं अफ्रीकी मूल की दाता किस्म (आइ ई–882) के संकरण से किया गया है। इस प्रजाति के तने की गाँठों पर हल्का बैंगनी रंग होता है तथा प्रत्येक बाली में 8–10 खुली हुई उंगलियाँ होती हैं।

वी.एल. मंडुवा-347: जल्दी पकने वाली मंडुवा की यह किस्म केन्द्रीय प्रजाति विमोचन समिति द्वारा उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, झारखण्ड, गुजरात एवं बिहार में वर्षाश्रित अवस्था के लिये वर्ष 2012 में विमोचित की गयी। इस प्रजाति ने उपरोक्त 6 राज्यों में राष्ट्रीय मानक प्रजाति बी.आर.–708 से 11.4 प्रतिशत अधिक उपज दर्ज की। इस प्रजाति ने अखिल भारतीय समन्वित प्रयोग क्षेत्रों में 21.73 कु./हे. की औसत उपज दी। यह प्रजाति प्रध्वंश रोग के लिये सामान्य रुप से प्रतिरोधी है। इस प्रजाति में लौह तथा जिंक की मात्रा भी अधिक है। यह प्रजाति विलम्ब से मानसून आने की दशा में आपात योजना के लिये उपयुक्त है।

वी.एल. मंडुवा-352: यह अधिक उपज देने वाली (25–30 कुन्तल प्रति हेक्टेयर) मध्यम झौंका रोगरोधी किस्म है। वर्ष 2014 में इस किस्म को पूरे देश (तमिलनाडु व आन्ध्र प्रदेश को छोड़कर) के लिए अनुमोदित किया गया था। इस किस्म का विकास वी.एल. मंडुवा–204 एवं अफ्रीकी मूल की दाता किस्म (आइ ई–882) के संकरण से किया गया है। इस प्रजाति की प्रत्येक बाली में 8–10 खुली हुई उंगलियॉ होती हैं। जल्दी पकने वाली मंडुवा की यह किस्म विलम्ब से मानसून आने की दशा में आपात योजना के लिये उपयुक्त है।

वी.एल. मंडुवा-376: यह अधिक उपज देने वाली (28–35 कुन्तल

प्रति हेक्टेयर) झौंका रोगरोधी किस्म है। वर्ष 2018 में इस किस्म को पूरे देश के लिए अनुमोदित किया गया था। यह प्रजाति 100 दिन में पकने वाली है।

वी.एल. मंडुवा–379: जल्दी पकने वाली व अधिक उपज देने वाली (26–35 कुन्तल प्रति हेक्टेयर) यह किस्म झौंका रोग के लिये भी प्रतिरोधी है। वर्ष 2018 में इस किस्म को उतर भारत के मंडुवा उगाने वाले राज्यों के लिए अनुमोदित किया गया है।

मादिरा

वी.एल. मादिरा–172: इस प्रजाति का विमोचन वर्ष 2000 में केन्द्रीय प्रजाति विमोचन समिति द्वारा किया गया। यह प्रजाति कंडुवा तथा चित्ती रोग सहिष्णु है। इसके पौधें की लम्बाई लगभग 95–100 से.मी. होती है। यह 85–90 दिनों में पक कर तैयार होने वाली किस्म है। इसके दाने स्लेटी रंग के होते हैं तथा औसत उपज 20–23 कु./हे. है।

वी.एल. मादिरा–207: इस प्रजाति का विमोचन वर्ष 2008 में केन्द्रीय प्रजाति विमोचन समिति द्वारा किया गया है। यह प्रजाति कंडुवा रोग सहिष्णु है। इसके पौधे की लम्बाई लगभग 115 से 125 से.मी. होती है। यह 90–95 दिनों में पक कर तैयार होने वाली किस्म है। इसके दाने स्लेटी रंग के होते हैं तथा औसत उपज 16–19 कु./हे. है।

निष्कर्ष:

हमारे पूर्वजों ने शायद लघु अन्न फसलों को वर्षाश्रित क्षेत्रों की खेती के लिये इस कारण चयन किया होगा क्योंकि ये विभिन्न प्रकार की भूमियों एवं जलवायु पर बखूबी उगायी जा सकती हैं। खाद्य सुरक्षा एवं पोषण के साथ साथ ये फसलें पशुपालन के पारम्परिक रिश्ते को भी मजबूत करती है। इन फसलों से प्राप्त चारा स्वादिष्ट एवं गुणवत्ता युक्त होता है जिससे कि इनसे पशुधन को भी बढ़ावा मिलता है। ये फसलें पारिस्थितिकीय तन्त्र की सुरक्षा करती है तथा मृदा एवं जल संरक्षण के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

शिक्षा के प्रति प्रत्येक किसान को जागरूक होना चाहिए तभी उनका जीवन बेहतर हो सकता है।

कृषि को व्यवसाय से जोड़कर ही किसानों की समस्यायों का हल किया जा सकता है।

शिक्षित किसान सबसे ज्यादा खुशहाल होते है।

हमें अपने जीवन में कभी-कभी डॉक्टर, वकील, इंजीनियर की जरूरत पड़ती है, परन्तु हर दिन तीन बार हमें किसान की जरूरत पड़ती है।

लघु कदन्नों की उत्पादन तकनीकी

दिलीप पंवार[1], मनोज कुमार सैनी[1], संजय एच.बी.[1], वी .अंजुला कृष्णा[1] एवं पी. सुप्रिया[1]

सारांश : लघु कदन्न अनाजों का एक ऐसा समूह है जो कि कम जल वाली भूमि, अर्थात् शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्रों तथा सीमित उर्वरा क्षमता वाली भूमि में भी अच्छी पैदावार देती हैं। कदन्न शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द ''खाद्यान्न'' से हुई है, जिसका मतलब 'गरीब का खाद्य अनाज' होता है। अधिकांश कदन्नों का उत्पत्ति स्थल भारत है। यह फसलें कई प्रकार के आवश्यक उपयोगी पोषक तत्वों से भरपूर होती है जो कि मानव शरीर के लिए लाभदायी व गुणकारी होते हैं। इसलिए इन फसलों को पोषक तत्व अनाज भी कहा जाता हैं।

प्रस्तावना :

यह फसलें कई प्रकार के जैविक व अजैविक कारकों के लिए प्रतिरोधी होती हैं अर्थात् उनका सामना करने में सक्षम होती हैं। इन फसलों की खेती कम गहरी लगभग 15 से.मी. से भी कम अर्थात् उथली जमीन पर भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। इन फसलों की महत्वपूर्ण बात यह है कि यह फसलें बहुत शीघ्र 3–4 महीने में परिपक्व हो जाती है व अच्छी उपज प्रदान करती है। लघु कदन्न फसलों मे रागी सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। भारत में बड़े पैमाने पर अर्थात समुद्र स्तर से लेकर हिमालय की ऊँचाई तक इसकी खेती की जाती है।

भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख लघु कदन्न फसलें:–

लघु कदन्न (माइनर मिलेट्स)	सामान्य नाम	वानस्पतिक नाम
फॉक्सटेल मिलेट	कंगनी	सीटेरिया इटेलिका
फिंगर मिलेट	रागी / मंडुआ	इलुसिन कोराकाना
कोदो मिलेट	वारागु	पास्पेलम स्क्रोबाइकुलेटम
लिटिल मिलेट	कुटकी	पेनिकम सुमाट्रेन्स
बार्नयार्ड मिलेट	सांवा	इकाइनोक्लोआ एस्कुलेन्टा
प्रोसो मिलेट	चेना / चीना	पेनिकम मिलिएसियम

भारत का वैश्विक कदन्न उत्पादन में योगदान (2016) :–

लघु कदन्न (माइनर मिलेट्स)	क्षेत्रफल (000 हेक्टेयर)	उत्पादन (000 टन)	उत्पादन (कि.ग्रा./हि.)
कंगनी	72.6	50.2	691
रागी	1138.3	1822.0	1601
वारागु	200	84.2	419
कुटकी	255.5	119.9	469
सांवा	146.0	151.0	1034
चेना	31	20.0	645
कुल योग	1843.4	2247.3	

स्त्रोत– आई.आई.एम.आर., हैदराबाद (एफ.ए.ओ. आँकड़े, भारत सरकार के आँकड़े)

[1]स्नातकोत्तर छात्र आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन,
रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

लघु कदन्नों का महत्वः–

लघु कदन्नों के उत्पादन से कई प्रकार की स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं (मधुमेह, ह्रदय विकारों) को दूर किया जा सकता है एवं पोषक तत्वों जैसे आयरन, जिंक, फोलिक अम्ल, कैल्शियम इत्यादि की पूर्ति की जा सकती है। अति महत्वपूर्ण बात यह है कि यह फसलें अत्यधिक गर्म व शुष्क क्षेत्रों में कम जल होने के पश्चात् भी अच्छी पैदावार प्रदान करती है। यदि इन फसलों में स्थानीय किस्मों के स्थान पर उन्नत किस्मों का उपयोग किया जाए तो इन फसलों की उपज को तीन गुना तक बढ़ाया जा सकता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के द्वारा 1986 में अखिल भारतीय समन्वित लघु कदन्न सुधार परियोजना की शुरुआत के बाद इन फसलों पर जोर दिया गया।

यह फसलें मोटे अनाज (गेहूँ, चावल व मक्का) की तुलना में जल्दी पक जाती हैं। इन फसलों का कम मूल्य होने के कारण यह आमजन को आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। यह फसलें सी–4 पादपों की श्रेणी के अंतर्गत होने के कारण अत्यधिक मात्रा में जल उपयोग दक्षता (डब्ल्यू. यू.ई.) अर्थात् उपलब्ध जल का उपयोग करके अधिकाधिक उपज प्रदान करती है व अधिक मात्रा में कार्बन संचय करती है।

लघु कदन्नों का पोषकीय महत्त्वः–

लघु कदन्नों में मोटे अनाजों (गेहूँ, चावल व मक्का) की तुलना में पोषक तत्व जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, कच्चे रेशे, सूक्ष्म तत्व (कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन इत्यादि) प्रचुर मात्रा में पाए जाते है, इसलिए यह फसलें शिशुओं, दूध पिलाने वाली माताओं व वयस्कों के लिए लाभदायी व गुणकारी होती है।

लघु कदन्नों में धीमी गति से स्त्रावित होने वाला ग्लूकोज पाया जाता है जिसका ग्लाईसेमिक सूचकांक बहुत कम होता है। यह फसलें वैश्विक स्तर की बीमारी जैसे मधुमेह की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, इसमें उपस्थित रेशे की मात्रा कब्ज जैसी समस्याओं से भी राहत दिलाती है। यह फसलें उन लोगों के लिए भी अच्छी होती है जो ग्लूटेन के प्रति असहनशील होते है। इसमें पाया जाने वाला मैग्नीशियम सूक्ष्म तत्व हड्डियों के खनिजीकरण, दाँतो के रख–रखाव व प्रोटीन को बनाने में सहायता करता है। लघु कदन्नों के संपूर्ण दानों व इनसे बने उत्पादों के नित्य सेवन करने से अनेक बीमारियों जैसे मधुमेह, पाचन तंत्र संबंधित व ह्रदय विकार जैसी गंभीर समस्याओं से बचा जा सकता है।

लघु कदन्नों का पोषकीय संगठन (ग्राम/मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम दाना):–

मिलेट/कदन्न	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	ऊर्जा (कि.कैलोरी)	रेशा (ग्राम)	कैल्शियम (मि.ग्राम)	फास्फोरस (मि.ग्राम)	मैग्नीशियम (मि.ग्राम)
कंगनी	60.1	12.3	4.30	331	–	31.0	188	81
रागी	66.8	07.2	1.92	320	11.2	364.0	210	146
वारागु	66.2	08.9	2.55	331	06.4	15.3	101	122
कुटकी	65.5	10.1	3.89	346	7.7	16.1	130	91
सांवा	65.5	06.2	2.20	307	–	20.0	280	82
चेना / चीना	70.4	12.5	1.10	341	–	14.0	206	153

स्रोतः–आई.आई.एम.आर., हैदराबाद (भारतीय खाद्य संगठन तालिका, एन.आई.एन.–2017)

कोदो कदन्न में विटामिन–बी खासतौर पर नियासिन, पायरिडोक्सिन, फोलिक अम्ल व पोषक तत्व जैसे (जिंक, मैग्नीशियम, पोटेशियम) प्रचुर मात्रा में पाए जाते है, इसमें रेशे की मात्रा अधिक व वसा की मात्रा कम पायी जाती है। इसमें अधिक मात्रा में लेसिथिन पाया जाता है जो कि मानव शरीर के तंत्रिका तंत्र को मजबूती प्रदान करता है। चेना / चीना कदन्न में उच्च मात्रा में प्रोटीन (12.5) पाया जाता है। सावा कदन्न में गामा–अमीनो–ब्यूटायरिक अम्ल (जी.ए.बी.ए.) व बीटा–ग्लूकेन पाया जाता है जो कि जारण विरोधक (एंटी ऑक्सीडेंट) व रक्त में पाए जाने वाले वसा (कोलेस्ट्रॉल) के स्तर को भी कम करने में सहायक होता है। अंकुरित कदन्न, शिशुओं के लिए उपयुक्त आहार है। वयस्कों एवं दुर्बल व्यक्तियों के द्वारा भी इसे आसानी से पचाया जा सकता है।

कदन्नों की क्षारीय प्रवृत्ति होने के कारण यह पाचन तंत्र को स्वस्थ व तनाव को भी नियंत्रित करता है। मानव शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत व स्वस्थ बनाए रखता है, इसके साथ ही यह मोटापे को भी कम करता है व जीवन शैली से संबंधित व्याधियों से दूर रखता है।

लघु कदन्नों की शस्य क्रियाएंः–

जलवायु– यह फसलें सीमांत भूमि वाली मृदा के वातावरण में अच्छे से उग सकती हैं, यह खाद्य फसलें विशेष तौर पर प्रवृत्ति से जलवायु के प्रति प्रत्यास्थ होती हैं। यह फसलें कम जल, 300 मि.मी. वर्षा आधारित क्षेत्रों में भी अच्छे से उगती हैं व जल्दी परिपक्व होती हैं तथा (जलवायु का हिस्सा नहीं) कम मात्रा में निवेश (उर्वरक, जल) की आवश्यकता होती हैं।

कदन्न फसलें कृषकों के लिए उपयुक्त व अनुकूल होती हैं इसलिए इन फसलों को सुस्त कृषक फसल भी कहा जाता है क्योंकि इन फसलों के लिए गहरी जुताई की आवश्यकता नहीं होती हैं, इसमें एक बार बीजों की बुवाई के बाद केवल 2 से 3 जीवन रक्षक वर्षा की जरूरत होती हैं, जो कि फसल को बचाए रखती हैं, जिससे कृषक को अच्छी पैदावार होती हैं।

लघु कदन्नों में पंक्तियों में बुवाई की जानी चाहिए। इन फसलों को कई दाल वाली फसलों के साथ अंतर फसल के रूप में भी उगाया जा सकता हैं, ज्यादातर कदन्न कम अवधि वाली फसलें होती हैं व अधिक सूखा प्रतिरोधी भी होती हैं, इसलिए इन्हें आकस्मिक सूखा होने की स्थिति में भी आसानी से उगाया जा सकता हैं।

बीजोपचारः– लघु कदन्नों में सूखा प्रतिरोधी क्षमता को बीज कठोरण या दृढ़ीकरण द्वारा बढ़ाया जा सकता हैं, इस प्रक्रिया के लिए बीजों को जल में 2 प्रतिशत पोटेशियम क्लोराइड के विलयन में 12 घंटे तक रखने के बाद, 12 घंटे तक सूर्य के प्रकाश में सुखाया जाना चाहिए, इसके पश्चात् बीज बुवाई के लिए तैयार हो जाता हैं।

पोषक तत्व प्रबंधनः– पोषक तत्व प्रबंधन की बात की जाए तो इसमें लगभग 25:15:15 अनुपात में नत्रजन, फास्फोरस व पोटेशियम की आवश्यकता पड़ती हैं, जिसमें संपूर्ण फास्फोरस एवं पोटेशियम व आधी नत्रजन की मात्रा बुवाई के समय व शेष आधी नत्रजन की मात्रा, बुवाई के 30–35 दिन बाद खड़ी फसल में छिड़काव की जाती है।

भारत में उगाई जाने वाली लघु कदन्न की उन्नत किस्में:–

लघु कदन्न	किस्म	विमोचन वर्ष	अनुकूल क्षेत्र
रागी	डी.एच.एफ.एम. 78–3 छत्तीसगढ़ रागी, वी.एल.–379, जी.एन.एन–7, सी.ओ.–15	2018 2017	कर्नाटका, छत्तीसगढ़ उत्तराखंड, बिहार, झारखंड
कंगनी	डी.एच.एफ.टी.–109–3, राजेंद्र काउनी–1–2, सूर्या नंदी, एस.आई.ए.–3088	2018 2012	कर्नाटका, आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात
वारागु	जवाहर कोदो, इंदिरा कोदो, टी.एन.ए.यू.–86, आर.के.–390–25	2016 2012	मध्य प्रदेश वर्षा आधारित क्षेत्र, छत्तीसगढ़
सांवा	सी.ओ. (के.वी.)–2, डी.एच.बी.एम.–93–2, डी.एच.बी.एम.–93–3	2018 2016	तमिलनाडु सभी राज्य
कुटकी	डी.एच.एल.एम.–36–3, जी.एन.वी.–3, टी.एन.पी.–एम.–230	2018 2017	कर्नाटका सभी राज्य

व्यवसायिक फसलों की तुलना में लघु कदन्नों से होने वाले लाभ :–

कदन्नों की खेती किसानों को अन्य व्यवसायिक फसलों की तुलना में अधिक आर्थिक स्थिरता प्रदान करती है। किसानों में एक अवधारणा यह भी बनी हुई है कि व्यवसायिक फसलें ज्यादा मुनाफा प्रदान करती है परंतु सूखे की स्थिति में यह फसलें पूर्णतया नष्ट हो जाती हैं, फलस्वरूप वो किसान आत्महत्या कर रहे हैं जो परंपरागत फसलें नहीं उगा रहे हैं जैसे कदन्न फसलें।

इसका दूसरा अच्छा उदाहरण यह है कि बी.टी. कपास की उपज 5–6 क्विंटल प्रति एकड़ होती है एवं किसान की प्रति एकड़ सकल आय ₹ 10000 से ₹ 12000 होती है और सभी लागतों को हटाने के बाद किसानों को शुद्ध मुनाफा ₹ 5000 प्रति एकड़ होता है। जबकि कदन्न फसलों की बात की जाए तो इसकी उपज 5 से 6 क्विंटल प्रति एकड़ होती है व सकल आय ₹ 16000 से ₹ 18000 प्रति एकड़ होती है एवं सभी लागतों को हटाने के बाद किसानों को शुद्ध मुनाफा ₹ 13000 से ₹ 15000 प्राप्त होता है जो कि कपास की तुलना में ढाई से तीन गुना ज्यादा है।

निष्कर्षः–

कदन्न फसलों को उगाने का मुख्य फायदा यह है कि कम शस्य क्रियाएं होने के कारण इनके उत्पादन की लागत में कमी आती है व किसानों को ज्यादा मुनाफा देती है। कदन्न फसलें व्यवसायिक फसलों की तुलना में बदलती जलवायु के प्रति ज्यादा सहनशील होती है। इन दिनों लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ रही है व लघु कदन्नों की माँग भी लगातार बढ़ रही है परंतु उत्पादन उतना नहीं हो पा रहा है। जो कि लोगों की माँग को पूरा कर सकें, इसलिए हमें किसानों को लघु कदन्नों की फसल उगाने के लिए प्रोत्साहित करना होगा ताकि उन्हें अधिक लाभ मिल सके और देश का किसान आत्महत्या करने को विवश ना हो।

खेती के व्यवसाय में भी फायदा होता है, पर खेती करने का भी एक कायदा होता है।

मोटे अनाजों में ट्राइकोडरमा द्वारा जैविक नियंत्रण

राकेश सिंह सेंगर, अभिषेक सिंह एवं आलोक कुमार सिंह

सारांश : पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इस समय किसानों के द्वारा गन्ने की कटाई के उपरांत गेहूँ की बुवाई की जा रही है लेकिन अचानक ही बरसात ने लोगों की खेती की क्रिया विधि को प्रभावित किया है। जैसा कि हम सभी लोग जानते हैं कि अधिक वर्षा के कारण मिट्टी में हमेशा नमी बनी रहती है। जो रोगों को पैदा करने और बढ़ावा देने में सहायक होती है। यह रोग कारक जीव फसलों को कई तरह से नुकसान पहुँचाते हैं जिससे फसल का उत्पादन तो कम होता ही है साथ ही साथ उसकी गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है जिसके परिणाम स्वरूप किसानों को भारी आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है। फसलों में लगने वाले रोगों के बचाव के लिए कई विधियाँ प्रचलित हैं इन विधियों में रासायनिक दवाओं का प्रयोग बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ है लेकिन उसके बावजूद भी किसान रासायनिक दवाओं को डालना ज्यादा उचित समझते हैं। खर्चीली रसायनों के प्रयोग से कृषि जल एवं वायु मंडल दोनों ही प्रभावित होते हैं, यहाँ पर ऐसी वनस्पतियों एवं जलीय जीव–जंतु पाए जाते हैं जो कहीं और नहीं मिलते हैं। जाने–अनजाने में इन वनस्पतियों एवं जलीय जीव–जंतुओं को हानि पहुंचाकर यह केमिकल काफी नुकसान पहुंचा रहे हैं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए कि हम वातावरण को कम नुकसान पहुंचाएं और जीव–जंतु भी प्रभावित ना हो इसके लिए जरूरी है कि जैविक विधि के द्वारा फसलों में लगने वाले रोगों का नियंत्रण किया जाए इसके लिए ट्राइकोडर्मा बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

प्रस्तावना

क्या है जैविक नियंत्रण?

किसी कीटनाशक जीव की किसी और जीव के द्वारा रोकथाम और उनको प्रचुर मात्रा में आवश्यक स्थान पर छोड़ना एवं बढ़ावा देना ही जैविक नियंत्रण कहलाता है। जैविक नियंत्रण पूर्णता एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसमें हम केवल इसके बल को बढ़ावा देते हैं। वास्तव में इसका प्रयोग हमारे छोटे और मझले किसानों के लिए अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होगा जो कि उचित प्रशिक्षण से वंचित हैं तथा आधुनिक कृषि अपनाना चाहते हैं एवं आर्थिक रूप से कमजोर हैं।

क्या है ट्राइकोडर्मा?

ट्राइकोडर्मा पौधों के जड़–विन्यास क्षेत्र (राइजोस्फियर) में खामोशी से अनवरत कार्य करने वाला सूक्ष्म कार्यकर्ता है। यह एक अरोगकारक मृदोपजीवी कवक है, जो प्रायः कार्बनिक अवशेषों पर पाया जाता है। इसकी दो प्रजातियाँ विशेष रूप से प्रचलित हैं–ट्राइकोडर्मा विरिडी एवं ट्राइकोडर्मा हर्जियानम। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं कृषि की दृष्टि से उपयोगी है। यह एक जैव–कवकनाशी है और विभिन्न प्रकार की कवकजनित बीमारियों को रोकने में मदद करता है। इससे रासायनिक कवकनाशी के ऊपर निर्भरता कम हो जाती है। इसका प्रयोग प्रमुख रूप से रोगकारक जीवों की रोकथाम के लिये किया जाता है। इसका प्रयोग प्राकृतिक रूप से सुरक्षित माना जाता है क्योंकि इसके उपयोग का प्रकृति में कोई दुष्प्रभाव देखने को नहीं मिलता है।

ट्राइकोडर्मा सर्वव्यापी फफूंद है जो अलग–अलग वातावरण में पाई जाती है। वातावरण के साथ–साथ ट्राइकोडर्मा प्रजाति के आकार व प्रकार में बदलाव देखा गया है। अधिकतर ट्राइकोडर्मा प्रजाति में सर्कुलम बीजाणु नहीं होता जबकि सर्कुलम बीजाणु पैदा करते हैं जिन्हें कुंडिया या फाइलोक्योर कहा जाता है। यह बोतल के आकार के कुंडलियों में यानी कि फाइलों बीजाणु से अलग होकर मिलते हैं जो प्रजाति अंतिम रूप से मजबूत होती है यह क्ले माइडो बीजाणु भी पैदा करती है यह क्ले माइडो बीजाणु मोटी परत वाली पोस्ट होती है, जोकि अंत में परिवर्तित हो जाती है। यह हल्के हरे रंग से लेकर गहरे हरे रंग के समूह में देखे जा सकते हैं।

कैसे बनाएं ट्राइकोडर्मा?

मिट्टी से अलग करने के बाद इन जीवो को जिओ माध्य में सबकल्वर किया जाता है तथा किसी मिक्सी में मिलाया जाता है जिससे ट्राइकोडर्मा घोल का एक रूप धारण कर लेते हैं। इन फूलों को उपयुक्त सब्सट्रेट जैसे धान, गेहूँ की भूसी, अरहर की दाल का छिलका, वी का कचरा, मक्के का दाना एवं पाउडर आदि उपयोग में लाया जाता है 1:2 के अनुपात में अच्छी तरह से उसको मिला दिया जाता है और पैकेट तैयार कर लिया जाता है। इस उत्पाद को मिट्टी में मिला दिया जाता है जिसमें फसल तैयार करनी होती है। ऐसा करने से जब बीजों

कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार बल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय मोदीपुरम, मेरठ– 250110

से जड़ें निकलती हैं तो रोगाणु को पहले से ही जैव नियंत्रण जनों को घेर लेती हैं और रोगों से लड़ने के साथ–साथ पौधों की वृद्धि में भी सहयोग करते हैं।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग की विधिः–

इसके द्वारा बीजों, जड़ों तथा कंधों को उपचारित किया जाता है पौधों को उपचारित करने के उपरांत, खेत की मिट्टी तथा कंपोस्ट को उपचारित भी किया जा सकता है। खड़ी फसल पर इसका छिड़काव किया जाता है जिससे कि रोग नियंत्रण में काफी सफलता मिलती है, अधिकतर फसलों में रोग उत्पन्न करने वाले कवक और जीवाणु बीजों में भी पनपते हैं। यह रोग कारक बीज उगने के साथ ही रोग उत्पन्न करते हैं जैसे कि टमाटर, मिर्च, बैंगन में लगने वाले अर्थ गलन, डंपिंग ऑफ, जड़ गलन रोग उसकी रोकथाम के लिए बीज को रात भर छाया में सुखाकर अगले दिन प्रातः काल में ही बुवाई कर देते हैं आलू, अदरक, हल्दी केला आदि किसी भी कंधे तथा घाटों के बीज के रूप में उपयोग में लाया जाता है इसके द्वारा उपचारित करने हेतु 1 किलोग्राम टेटेमा पाउडर को 100 लीटर पानी में घोल बनाकर बीजों को 30 मिनट तक घोल में डुबोकर रखने के बाद छाया में सुखाने के उपरांत सुखाकर बुवाई करते हैं तो रोग में नियंत्रण किया जा सकता है।

बीजोपचारः बीजोपचार के लिये प्रति किलो बीज में 5–10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर (फार्मूलेशन) जिसमें $2x10^6$ सी.एफ.यू. प्रति ग्राम होता है, को मिश्रित कर छाया में सुखा लें फिर बुवाई करें।

सीड प्राइमिंगः बीज बोने से पहले खास तरह के घोल की बीजों पर परत चढ़ाकर छाया में सुखाने की क्रिया को 'सीड प्राइमिंग' कहा जाता है। ट्राइकोडर्मा से सीड प्राइमिंग करने हेतु सर्वप्रथम गाय के गोबर का गारा (स्लरी) बनाएँ। प्रति लीटर गारे में 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा उत्पाद मिलाएँ और इसमें लगभग एक किलोग्राम बीज डुबोकर रखें। इसे बाहर निकालकर छाया में थोड़ी देर सूखने दें फिर बुवाई करें। यह प्रक्रिया खासकर अनाज, दलहन और तिलहन फसलों की बुवाई से पहले की जानी चाहिए।

मृदा शोधनः एक किलोग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर को 25 किलोग्राम कम्पोस्ट (गोबर की सड़ी खाद) में मिलाकर एक सप्ताह तक छायादार स्थान पर रखकर उसे गीले बोरे से ढँकें ताकि इसके बीजाणु अंकुरित हो जाएँ। इस कम्पोस्ट को एक एकड़ खेत में फैलाकर मिट्टी में मिला दें फिर बुवाई/रोपाई करें।

पौधों पर छिड़कावः कुछ खास तरह के रोगों जैसे पर्ण चित्ती, झुलसा आदि की रोकथाम के लिये पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देने पर 5–10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

मुख्य खेत की मिट्टी तथा कंपोस्ट आदि को कैसे करें उपचारित?

मुख्य खेत की मिट्टी पर 250 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर को अच्छी तरह से गोबर की खाद में मिलाकर 400 प्रति ग्राम प्रति लीटर की दर से छिड़काव कर उसे मिट्टी में मिला देते हैं, फिर बीज की बुवाई की जाती है। इसी प्रकार मुख्य खेत में बुवाई से पूर्व एक लीटर ट्राइकोडर्मा पाउडर 100 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलाकर उपचारित कर देते हैं। पौधों में आने वाले रोगों से बचाव हेतु 2 से 50 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर का 50 लीटर पानी में घोल बनाकर मिट्टी पर 3 लीटर प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए।

रसायनों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के कारण आज किसानों को प्रतिकूल प्रभावों का सामना करना पड़ रहा है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश का यदि हम उदाहरण देखें तो यहाँ के किसानों के लिए भूमि का अब केवल कीटनाशकों और उर्वरकों पर ही निर्भर रह गया है, ऐसे में बड़ा सवाल है कि किसानों की समस्याओं का हल कैसे खोजा जाए। इसका जवाब है कि वह अपनी भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए जैविक नियंत्रण पद्धतियों को अपनाएं तो भूमि की उर्वरा शक्ति बरकरार बनी रहेगी।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग से लाभः–

1. यह रोगकारक जीवों की वृद्धि को रोकता है या उन्हें मारकर पौधों को रोग मुक्त करता है। यह पौधों की रासायनिक प्रक्रियाओं को परिवर्तित कर पौधों में रोगरोधी क्षमता को बढ़ाता है। अतः इसके प्रयोग से रासायनिक दवाओं, विशेषकर कवकनाशी पर निर्भरता कम होती है।
2. यह पौधों में रोगकारकों के विरुद्ध तंत्रगत अधिग्रहित प्रतिरोधक क्षमता (सिस्टेमिक एक्वायर्ड रेसिस्टेन्स) की क्रियाविधि को सक्रिय करता है।
3. यह मृदा में कार्बनिक पदार्थों के अपघटन की दर बढ़ाता है अतः यह जैव उर्वरक की तरह काम करता है।
4. यह पौधों में एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि को बढ़ाता है।
5. यह पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है क्योंकि यह फास्फेट एवं अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों को घुलनशील बनाता है। इसके प्रयोग से घास और कई अन्य पौधों में गहरी जड़ों की संख्या में बढ़ोत्तरी दर्ज की गई जो उन्हें सूखे में भी बढ़ने की क्षमता प्रदान करती है।
6. ये कीटनाशकों, वनस्पतिनाशकों से दूषित मिट्टी के जैविक उपचार (बायोरिमेडिएशन) में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें विविध प्रकार के कीटनाशक जैसे–ऑरगेनोक्लोरिन, ऑरगेनोफास्फेट एवं कार्बोनेट समूह के कीटनाशकों को नष्ट करने की क्षमता होती है।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग में सावधानियाँः–

1. ट्राइकोडर्मा कल्चर / फार्मूलेशन को उचित एवं प्रमाणित संस्था अथवा कम्पनी से ही खरीदें।
2. कल्चर / फार्मूलेशन छः महीने से ज्यादा पुराना न हो।
3. बीज–पौधे उपचार का कार्य छायादार एवं शुष्क स्थान पर करें।
4. ट्राइकोडर्मा के साथ–साथ अन्य कवकनाशी रसायनों का प्रयोग न करें।
5. ट्राइकोडर्मा के प्रयोग के 4–5 दिनों के पश्चात तक रासायनिक कवकनाशी का प्रयोग न करें।
6. सूखी मिट्टी में ट्राइकोडर्मा का प्रयोग न करें। नमी इसके विकास और बचे रहने के लिये एक अनिवार्य पहलू है।
7. ट्राइकोडर्मा उपचारित बीज को सूर्य की सीधी धूप न लगने दें।
8. कार्बनिक खाद में मिलाने के बाद इसे लम्बी अवधि के लिये न रखें।

गुणवत्ता सम्बन्धी समस्याओं का समाधानः–

1. गुणवत्ता आश्वासन प्रणाली को मजबूत किया जाना चाहिए। निर्धारित प्रारूप का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिये हैंडलिंग और प्रसंस्करण के विभिन्न चरणों में यादृच्छिक निरीक्षण किया जाना चाहिए।
2. अपंजीकृत और अनियमित उत्पादों को सतर्कता से खत्म करना चाहिए।
3. जाली आश्वासनों वाले उत्पाद की उत्पत्ति का सुराग पता कर सख्तीपूर्ण कार्यवाही की जानी चाहिए।
4. गैर सरकारी और निजी एजेंसियों द्वारा जैव जीवनाशकों के विभिन्न पहलुओं जैसे गुणवत्ता, उपयोग, सक्रिय घटक पर उपभोक्ता जागरुकता पैदा किये जाने की जरूरत है।

ट्राइकोडर्मा संवर्धित खादः–

इस विधि से किसान एक व्यावसायिक उत्पाद की छोटी मात्रा से पर्याप्त मात्रा अपने स्तर पर बनाकर न केवल बड़े क्षेत्र में प्रयोग कर सकते हैं बल्कि अपने ही स्तर पर इसे गुणित कर ज्यादा–से–ज्यादा फसलों में भी प्रयोग कर सकते हैं। पर, ध्यान रखें कि यह लम्बी अवधि के लिये न करें। 100 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट या नीम की खली लें, इसे किसी छायादार शेड में फैलाकर रखें, फिर इसके ऊपर एक किलोग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर डाल दें और कुदाल या फावड़े से अच्छी तरह मिलाएँ, अगर यह सूखी लगे तो हल्की पानी की छींटे दे दें, इसके बाद इसे पॉलीथीन से ढँक दें, हर 7 दिन के अन्तराल पर मिश्रण को मिलाएँ। लगभग 20 दिन में खाद ट्राइकोडर्मा संवर्धित हो जाएगी जिसे खेतों में विस्तारित कर अथवा जोत–गड्ढे में डालकर फसल लगाएँ।

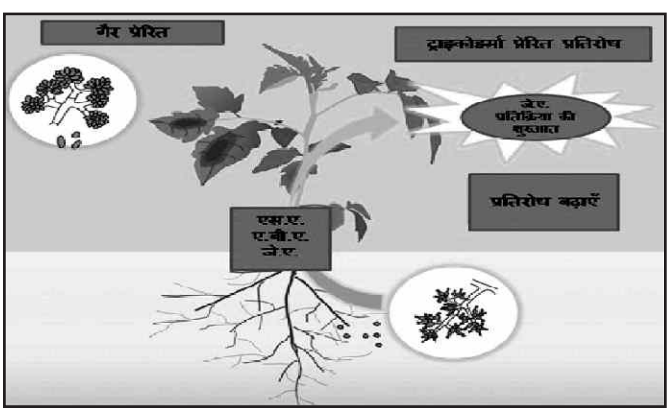

पौधे मे ट्राइकोडर्मा द्वारा की जाने वाली क्रियाविधि का दृश्य

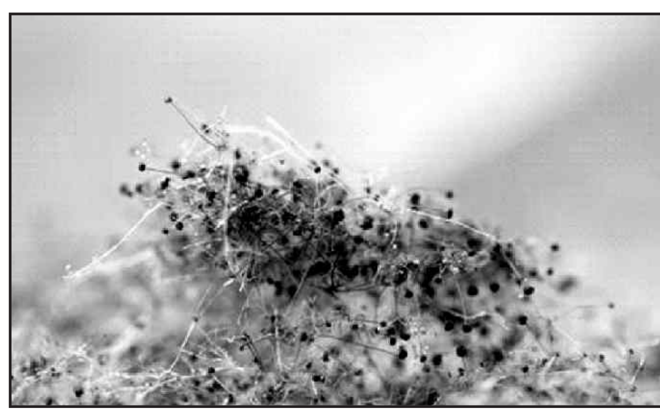

ट्राइकोडरमा बायोपेस्टिसाइड

निष्कर्षः

खेतों की मिट्टी में अनेक प्रकार की फफूंद की प्रजातियाँ पाई जाती हैं लेकिन उसमें से एक बहुत ही उपयोगी फफूंद ट्राइकोडरमा भी खेत की मिट्टी में मौजूद होती है। ट्राइकोडर्मा एक प्रकार का मित्र फफूंद है जो विभिन्न प्रकार की फसलों में पाया जाता है। यह मृदाजनित रोग उकठा आद्रपतन, कंद विगलन और जड़गलन आदि को नियंत्रित करने के लिए महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह फसलों में रोग उत्पन्न करने वाले फफूंद को भी रोकता है ट्राइकोडर्मा मृदा जनित फफूंद है इसलिए यह उचित वातावरण पाकर मृदा में भली–भांति फैलता एवं पनपता है तथा नर्सरी की अवस्था में पौधों को एक सुरक्षा कवच प्रदान करता है, सही मायने में यह फसलों का एक सच्चा मित्र है।

जीवन शैली संबंधी विकारों एवं कुपोषण में लघु कदन्नों की उपयोगिता

दिवाकर सिंह[*] , उदित एम. नकरानी एवं किरण पी. सुथार

सारांश : लघु कदन्न छोटे अनाज होते हैं जिन्हें 'माइनर मिलेट्स' भी कहते हैं तथा न्यूनतम सिंचाई, न्यूनतम खाद एवं न्यूनतम कीटनाशकों के साथ सीमांत भूमि पर उगाए जाते हैं। यह खाद्य और पोषण सुरक्षा में योगदान करते हैं। लघु कदन्न को पोषक तत्वों से भरपूर अनाज के रूप में पहचाना जाता है, क्योंकि यह मानव शरीर के सामान्य कामकाज के लिए महत्वपूर्ण पोषक तत्व प्रदान करता है। इसे वर्षा आधारित कृषि में उगाया जाता है तथा टिकाऊ कृषि के लिए अति महत्वपूर्ण है। लघु कदन्न को अकाल रुपी फसलों एवं अनाथ फसलों के रूप में भी जाना जाता है। लघु कदन्न सूखे के प्रति सहिष्णु फसलें हैं। भारत सरकार ने कदन्न के पोषण महत्व को देखते हुए वर्ष 2018 को 'कदन्न राष्ट्रीय वर्ष' के रूप में घोषित किया तथा 'कदन्न' को पोषक–अनाज के रूप में नामित किया।

प्रस्तावनाः

भोजन स्वास्थ्य तथा बीमारियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दुनिया भर में जीवन शैली संबंधित विकारों में वर्तमान वृद्धि को देखते हुए सभी आयु वर्गों में स्वस्थ पोषण को बढ़ावा देना अति आवश्यक है। व्यक्तिगत रूप से ही नहीं बल्कि पूरी आबादी के लिए खाने की आदत में सुधार होना चाहिए। पोषण दोधारी तलवार है क्योंकि पोषण में अधिकता तथा कमी दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। शिशुओं में पोषण कि कमी विशेष रूप से हानिकारक है जबकि वयस्कों में पोषण की अधिकता, किन्तु बाद के वर्षों में दोनों रूप सभी आयु वर्गों को प्रभावित करते हैं। पोषण की कमी संबंधी बीमारियों के तहत कुछ महत्वपूर्ण उदहारण हैं, जैसे कि एनीमिया आहार में लौह तत्व के अपर्याप्त सेवन के कारण होता है, ऑस्टियोपोरोसिस (हड्डियों की कमजोरी) आहार में कैल्शियम के अपर्याप्त सेवन के कारण होती है तथा आहार में विटामिनों के अपर्याप्त सेवन के कारण कई शारीरिक विकार उत्पन्न होते हैं। दूसरी ओर अधिक खाने तथा शारीरिक गतिविधि में कमी मोटापे और मोटापे से संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बनती है।

मानव स्वास्थ्य पर कुपोषण का प्रभाव

कई विकासशील देशों को कुपोषण के दोहरे बोझ का सामना करना पड़ रहा है, एक तरफ छिपी भूख के साथ एवं दूसरी तरफ मोटापे के साथ। वैश्विक स्तर पर लगभग 190 करोड़ वयस्क अधिक वजन या मोटापे से ग्रस्त हैं, जबकि 46 करोड़ 20 लाख कम वजन से ग्रस्त हैं। पांच साल से कम आयु के लगभग 5 करोड़ 20 लाख बच्चे कुपोषित हैं, 1 करोड़ 70 लाख गंभीर रूप से कुपोषित हैं और 15 करोड़ 50 लाख अल्प विकसित बच्चे हैं, जबकि 4 करोड़ 10 लाख अधिक वजन या मोटापे से ग्रस्त हैं। पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों में 45 प्रतिशत वैश्विक मौतें पोषण के तहत जुड़ी हुई हैं (डब्ल्यू.एच.ओ., 2018)। भारत में बड़े पैमाने पर गर्भवती महिलाओं में एनीमिया तथा बच्चों में शारीरिक विकास में कमी पाई जाती है। भारत में पोषण की अत्यधिक कमी के कारण पांच वर्ष से कम आयु के 20 प्रतिशत बच्चे कुपोषण से संबंधित विकार से ग्रस्त हैं। पांच साल से कम उम्र के भारतीय बच्चों में से कम से कम 43 प्रतिशत कम वजन वाले हैं एवं 48 प्रतिशत (यानी 6 करोड़ 10 लाख बच्चे) लगातार पोषण की कमी के चलते अल्पविकसित हैं। विश्व के प्रति 10 अल्पविकसित बच्चों में से 3 भारतीय बच्चे होते हैं। भारत में प्रति वर्ष कम वजन वाले बच्चों के जन्म लेने की संख्या सबसे ज्यादा है जोकि 74 लाख है। 6 से 59 महीने की आयु में लगभग 70 प्रतिशत बच्चे एनीमिक पाए जाते हैं। जो माताएं एनीमिक होती हैं उनके बच्चों के एनीमिक होने कि संभावना 7 गुना अधिक होती है, उन माताओं की तुलना में जोकि एनीमिक नहीं होती हैं (यू.एन.आई.सी.ई.एफ., 2018)।

जीवनशैली संबंधी विकारः

अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय आबादी में व्यस्त, आलस्ययुक्त एवं कम शारीरिक गतिविधियों के कारण जीवनशैली संबंधी विकार बढ़ रहे हैं। प्रमुख जीवन शैली विकारों में मधुमेह (आमतौर पर टाइप–2), उच्च रक्तचाप, मोटापा, ऑस्टियोपोरोसिस, पुराना प्रतिरोधी फुफ्फुसीय रोग, कैंसर, पुराना यकृत रोग, अल्जाइमर रोग, गठिया, अस्थमा, उपापचय सिंड्रोम एवं स्ट्रोक प्रमुख हैं। वैश्विक स्तर पर जीवनशैली संबंधी विकारों के कारण 63 प्रतिशत मौतें होती हैं। वैश्विक स्तर पर भारत जैसे निम्न और मध्यम आय वाले देशों में इस तरह की 80 प्रतिशत मौतें होती हैं। 60 वर्ष की आयु से पहले ऐसी 9 मिलियन से अधिक मौतें होती हैं। विश्व स्तर पर ये जीवनशैली संबंधी विकार पुरुषों और महिलाओं दोनों को प्रभावित

पादप आण्विक जीवविज्ञान एवं जैव प्रौद्योगिकी विभाग, अस्पी बागायत व वनीय महाविद्यालय, नवसारी कृषि विश्वविद्यालय, नवसारी–396450, गुजरात
**संबंधित लेखक : diwakar@nau.in*

करते हैं। भारत में 13 प्रतिशत महिलाएं और 9 प्रतिशत पुरुष अधिक वजन वाले या मोटे हैं। मोटापा अन्य जीवन शैली विकारों की संभावना को बढ़ाता है। आने वाले कुछ वर्षों में हृदय रोग और मधुमेह रोग को दोगुने से अधिक होने की संभावना है तथा कैंसर 25 प्रतिशत बढ़ने की संभावना है। डायबिटीज वाले ज्यादातर लोग 40 से 59 साल के बीच के होते हैं। हाल के वर्षों में मधुमेह की शुरुआत कम उम्र में सबसे अधिक परेशान करने वाली प्रवृत्ति है। एक अध्ययन में यह पाया गया कि गैर–मधुमेह की तुलना में मधुमेह के रोगियों में तीन गुना अधिक मृत्यु दर पाई जाती है। एक अनुमान के तहत 75 प्रतिशत कामकाजी महिलाओं को बिना कामकाजी महिलाओं की तुलना में कार्य स्थल पर अवसाद या सामान्य चिंता विकार से पीड़ित होने की संभावना बनी रहती है।

अधिक भोजन एवं शारीरिक गतिविधि की कमी मोटापे का मुख्य कारण है जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में मोटापा तेजी से बढ़ रहा है। मोटापे से बीएमआई में वृद्धि होने के साथ–साथ गैर–संक्रमणीय बीमारियों का खतरा भी बढ़ता है जो कई बिमारियों के लिए कारण बनता है जैसे कि कार्डियोवैस्कुलर (हृदय सम्बन्धी रोग), मधुमेह, मस्कुलोस्केलेटल विकार (विशेष रूप से ऑस्टियोआर्थराइटिस – जोड़ों की अत्यधिक अक्षम, अपक्षयी बीमारी) तथा कुछ कैंसर (जिनमें एंडोमेट्रियल, स्तन, डिम्बग्रंथि, प्रोस्टेट, यकृत, पित्ताशय की थैली, गुर्दे एवं कोलोन के कैंसर प्रमुख हैं)। जीर्ण तथा गैर–संक्रमणीय बीमारियों में बढ़ोत्तरी हो रही है, उदाहरण के लिए टाइप–2 मधुमेह तथा ग्लूकोज की सहनशीलता में कमी खतरनाक दर से बढ़ रही है एवं ग्रामीण (2.4 प्रतिशत) तथा शहरी (11.6 प्रतिशत) दोनों आबादी पर असर डाल रही है (डब्ल्यू.एच.ओ., 2018)। बढ़ते अनुसंधान एवं रोग व्यापकीय संबंधी साक्ष्य इन स्वास्थ्य समस्याओं के लिए आहार में विविधता की कमी को मुख्य कारण मानते हैं। अधिकांश स्वास्थ्य जोखिम आहार में जरुरी पोषक तत्वों की कमी के कारण होता है। इसलिए, हाल के दिनों में हर कोई अपने आहार के बारे में जागरूक हुआ है तथा इस तरह दुनिया भर में खाद्य उत्पादों के विकास द्वारा स्वास्थ्य के लिए जरुरी पोषक तत्वों की कमी की पहेली को सुलझाने का प्रयास तेजी से बढ़ रहा है। पोषण लोगों के आहार का मूल है, इसलिए अधिक भोजन के बजाय पौष्टिक भोजन करने की आवश्यकता है।

जीवन शैली संबंधी विकारों एवं कुपोषण में लघु कदन्न की उपयोगिता

6 लघु कदन्न मुख्य रूप से उगाए जाते हैं, जो हैं रागी, कोदों, सांवा, कुटकी, चीना या बरी तथा कुकुम। प्रोटीन, ऊर्जा, खनिज तत्व, न्युट्रास्युटिकल्स, फाइटोकेमिकल्स, आहार में पाए जाने वाला रेशा तथा विटामिनों के संबंध में लघु कदन्न अनाज पौष्टिक रूप से तुलनीय एवं प्रमुख अनाज से भी बेहतर होते हैं, इसलिए उन्हें पौष्टिकधान्य (न्युट्रासिरियल्स) भी कहा जाता है। इन फसलों में आहार विविधता, खाद्य सुरक्षा तथा पोषण सुरक्षा को बढ़ाने की काफी क्षमता है। चावल तथा गेहूँ के साथ लघु कदन्नों की तुलनात्मक पोषण तत्वों की सूची तालिका–1 में दी गई है।

तालिका–1 : चावल तथा गेहूँ के साथ लघु कदन्नों की तुलनात्मक पोषण तत्वों की सूची (प्रति 100 ग्राम)

अनाज	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	आहारीय रेशा (ग्राम)	ऊर्जा (किलो के.)	कैलशियम (मिग्रा.)	फॉसफोरस (मिग्रा.)	मैग्नीशियम (मिग्रा.)	जस्ता (मिग्रा.)	लौह (मिग्रा.)	बी1 (मिग्रा.)	बी2 (मिग्रा.)	बी3 (मिग्रा.)	फोलेट (मा.ग्रा.)
रागी	66.8	07.2	1.92	11.2	320	364	210	146	2.5	4.6	0.37	0.17	1.3	34.7
कोदों	66.2	08.9	2.55	06.4	331	15.3	101	122	1.6	2.3	0.29	0.20	1.5	39.5
चीना	70.4	12.5	1.10	–	341	14.0	206	153	1.4	0.8	0.41	0.28	4.5	–
कुकुम	60.1	12.3	4.3	–	331	31.0	188	81	2.4	2.8	0.59	0.11	3.2	15.0
कुटुकी	65.5	10.1	3.89	7.7	346	16.1	130	91	1.8	1.2	0.26	0.05	1.3	36.2
सांवा	65.5	6.2	2.2	–	307	20	280	82	3.0	5.0	0.33	0.10	4.2	–
गेहूँ का आटा	64.7	10.6	1.47	11.2	321	39.4	315	125	2.8	3.9	0.46	0.15	2.7	30.1
चावल	78.2	7.9	0.52	2.8	356	7.5	96	19	1.2	0.6	0.05	0.05	1.7	9.32

(स्रोत दयाकर एवं सहयोगी, 2017)

लघु कदन्न में मेथियोनीन (एक आवश्यक अमीनो एसिड जो प्रोटीन की गुणवत्ता में सुधार करता है) भरपूर मात्र में उपलब्ध होता है तथा गेहूँ या चावल की तुलना में 8–10 गुना अधिक कैल्शियम मौजूद होता है। कदन्न कार्बोहाइड्रेट में धीमी पाचन क्षमता की अनूठी गुणवत्ता होती है जो मधुमेह रोगियों के लिए अनुकूल है। उत्कृष्ट बहुगुणों के कारण लघु कदन्न खाद्य प्रसंस्करण तथा मूल्यवर्धन के विस्तार में काफी उपयोगी होता है। लघु कदन्न फसलों को पर्यावरण की विस्तृत एवं विविध परिस्थितियों में उगाया जा सकता है जैसे कि भारत में दक्षिणी कर्नाटक राज्य, नेपाल में हिमालय की तलहटी और पूर्वी व दक्षिणी अफ्रीका के मध्य–ऊँचे क्षेत्र, आदि (आई.सी.आर.आई.एस.ए.टी., 2012)।

प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं ऊर्जा मूल्यों के मामले में लघु कदन्न की पोषण क्षमता गेहूँ और चावल जैसे लोकप्रिय अनाज के बराबर होती है। लघु कदन्न में लगभग 7.7–12.5% प्रोटीन, 1.5–5.2% वसा, 55–72.6% कार्बोहाइड्रेट, 2–7% आहार में पाए जाने वाला रेशा तथा 2.5–3.5% खनिज तत्व पाए जाते हैं (सालेह एवं सहयोगी, 2013)। रागी लघु कदन्न में 350 मिलीग्राम/100 ग्राम कैल्शियम होता है जो सभी कदन्नों में सबसे ज्यादा होता है तथा चावल व गेहूँ से लगभग 10 गुना अधिक होता है। कैल्शियम एक महत्वपूर्ण खनिज तत्व है जिसका उपयोग मानव शरीर में मजबूत हड्डियों और दांतों का निर्माण करने के लिए होता है। ह्रदय तथा अन्य मांसपेशियों के सुचारू रूप से काम करने के लिए भी कैल्शियम की आवश्यकता होती है। कैल्शियम की कमी के कारण ओस्टियोपोरोसिस, ऑस्टियोपेनिया और हाइपोक्लेसेमिया जैसे विकारों के विकास का जोखिम बढ़ जाता है। जिन बच्चों को पर्याप्त कैल्शियम नहीं मिलता है वे वयस्कों के रूप में अपनी पूर्ण संभावित ऊँचाई तक विकसित नहीं हो पाते हैं। मानव आहार में रागी लघु कदन्न को शामिल करके कैल्शियम की कमी की समस्या को कम किया जा सकता है। सभी कदन्नों में से बाजरा में 11 मिलीग्राम/100 ग्राम लौह तत्व पाया जाता है जो कि चावल की तुलना में सात गुना अधिक तथा गेहूँ की तुलना में तीन गुना अधिक होता है। लौह तत्व की शरीर में कमी से एनीमिया होता है जो लाल रक्त कोशिकाओं (आरबीसी) में हीमोग्लोबिन के स्तर को कम करता है। हीमोग्लोबिन आरबीसी में पाए जाने वाला प्रोटीन है जो ऊतकों तक ऑक्सीजन ले जाने के लिए जिम्मेदार है। लौह तत्व की कमी से होने वाला एनीमिया सबसे आम प्रकार का एनीमिया है, और ऐसा तब होता है जब शरीर में खनिज लोहा पर्याप्त मात्रा में नहीं पहुँचता है। मानव शरीर को हीमोग्लोबिन बनाने के लिए लोहे की आवश्यकता होती है। जब रक्त प्रवाह में पर्याप्त लोहा नहीं होता है, तो शेष मानव शरीर को ऑक्सीजन की मात्रा नहीं मिल पाती है। शिशुओं एवं गर्भवती महिलाओं में एनीमिया का प्रसार अधिक पाया जाता है। नियमित आहार में बाजरा को शामिल करने से मानव शरीर में लौह तत्व की कमी की स्थिति को सुधारा जा सकता है। कदन्नों में विभिन्न प्रकार के जैव सक्रिय यौगिक भी पाए जाते हैं जैसे फाइटेट्स, पॉलीफिनॉल्स, टैनिन, ट्रीप्सिन अवरोधक कारक। ये जैव सक्रिय यौगिक विभिन्न धातुओं के साथ यौगिक बनाकर उन्हें निष्क्रिय करते हैं तथा उत्प्रेरक अवरोध गतिविधियों के लिए जिम्मेदार होते हैं जिस कारण इन्हें प्रतिशोधी पोषक तत्वों के रूप में जाना जाता है किन्तु आजकल इन्हें न्यूट्रास्यूटिकल्स (औषधियुक्त पोषक तत्व) कहा जाता है। यह पाया गया है कि ये प्रतिरोधी पोषक तत्व विभिन्न प्रकार के कैंसर जैसे बड़ी आंत का कैंसर, स्तन कैंसर, आहार नलिका का कैंसर इत्यादि के जोखिम को कम करते हैं। लघु कदन्न के दाने में बीज का छिलका एक मुख्य खाद्य घटक है और यह फाइटोकेमिकल्स (पादप रसायनों) का समृद्ध स्रोत है, जैसे आहार में पाए जाने वाला रेशा तथा पॉलीफिनॉल्स। अब यह पाया गया है कि फाइटेट्स, पॉलीफिनॉल्स तथा टैनिन लघु कदन्न आधारित खाद्य पदार्थों की एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि में भरपूर योगदान देते हैं तथा मानव स्वास्थ्य में सुधार, उम्र बढ़ने में देरी एवं उपापचय विकारों में रोकथाम के लिए एक महत्वपूर्ण कारक हैं (देवी एवं सहयोगी, 2014)। कदन्नों में विटामिन बी समुह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, विशेष रूप से विटामिन बी–1 (थियामिन), विटामिन बी–2 (राइबोफ्लेविन) तथा विटामिन बी–3 (नियासिन)। विटामिन बी–1 की कमी परिधीय तंत्रिका क्षति (बेरीबेरी) या केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में घावों (वर्निकि–कोर्साकॉफ सिंड्रोम) का कारण बनती है। विटामिन बी–2 की कमी से मुंह, होंठ और जीभ के कोनों में घाव तथा सेबोरिक डर्मेटाइटिस (रुसी) कि समस्या होती है। विटामिन बी–3 की कमी से पेलाग्रा (प्रकाश संवेदनशील त्वचा रोग) तथा अवसादग्रस्त मनोवैज्ञानिक विकार उत्पन्न होता है। नियमित आहार में लघु कदन्न को शामिल करने से विटामिन बी–1, बी–2 एवं बी–3 की कमी के कारण होने वाली बीमारियों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। लघु कदन्न में प्रतिरोधी स्टार्च तथा घुलनशील व अघुलनशील आहारीय रेशा भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है (सालेह एवं सहयोगी, 2013)। प्रतिरोधी स्टार्च मुख्य रूप से भोजन के पश्चात् होने वाले ग्लाइसेमिक एवं इंसुलिनमिक प्रतिक्रियाओं को कम करता है, प्लाज्मा कोलेस्ट्रॉल एवं ट्राइग्लिसराइड सांद्रता में कमी लाता है, पूरे शरीर में इंसुलिन संवेदनशीलता में सुधार करता है, संतृप्ति में वृद्धि करता है तथा वसा भंडारण को कम करता है। प्रतिरोधी स्टार्च वसा असुंतलन एवं इंसुलिन प्रतिरोध से जुड़े रोगों की रोकथाम के साथ–साथ, वजन, मधुमेह टाइप–2 और कोरोनरी

हृदय रोग के उपचार के लिए अति महत्वपूर्ण है तथा ये गुण प्रतिरोधी स्टार्च को वजन घटाने के आहार एवं आहार संबंधी उपचार के विकास के लिए एक आकर्षक आहार लक्ष्य बनाते हैं। आहारीय रेशा जो मानव की छोटी आंत में अपचनीय है वहीं दूसरी तरफ बड़ी आंत में पूरी तरह से या आंशिक रूप से किण्वित होता है तथा दो रूपों में उपलब्ध होता है पहला पानी में घुलनशील एवं पानी में अघुलनशील कार्बनिक यौगिक। आहारीय रेशे को कई अलग–अलग भिन्नताओं में विभाजित किया जा सकता है। इन भिन्नताओं में एरेबीनोजाईलान, इन्यूलिन, पेक्टिन, ब्रान, सेलूलोज, बीटा–ग्लुकान तथा प्रतिरोधी स्टार्च शामिल हैं। आहारीय रेशे के घटक बड़ी आंत के कार्यों को व्यवस्थित करते हैं तथा ग्लूकोज, लिपिड उपापचय एवं खनिज जैव उपलब्धता पर महत्वपूर्ण शारीरिक प्रभाव डालते हैं। आहारीय रेशा कुछ जठरंत्रिय रोगों, कब्ज, बवासीर, बड़ी आंत का कैंसर, एसिड भाटा रोग, ग्रहणी अल्सर, विपुटीशोथ, मोटापा, मधुमेह, आघात, उच्च रक्तचाप तथा हृदय रोगों के खिलाफ सुरक्षात्मक प्रभाव के रूप में जाने जाते हैं।

लघु कदन्न आधारित खाद्य उद्योगः

लघु कदन्न के बाजार को उत्पाद के आधार पर जैसे कि लपसी या हलुआ या दलिया, भाप से पके हुए उत्पाद, रोटी, पेय पदार्थ आदि के आधार पर विभाजित किया जा सकता है। लपसी या हलुआ या दलिया तथा भाप से पके हुए उत्पाद लघु कदन्न से प्रमुख पारंपरिक रूप से पके हुए उत्पादों में से कुछ हैं। ये मुख्य रूप से भारत और अफ्रीका के विभिन्न हिस्सों में खाए जाते हैं। लपसी या हलुआ या दलिया लघु कदन्न से आमतौर पर तैयार भोजन है। भारत में अन्य पारंपरिक रूप से तैयार किये जाने वाले किण्वित रोटी में मुख्य रूप से इडली, डोसा, मसा, इंजेरा, किसरा तथा गैलेट शामिल हैं।

इन दिनों पकाने के लिए तैयार (आर.टी.सी.) लघु कदन्न आधारित खाद्य उत्पाद खाद्य बाजार में उपलब्ध हैं जैसे कि रागी माल्ट, कार्बनिक शिशु भोजन, लघु कदन्न पुलाव, लघु कदन्न डोसा मिश्रण, सांवा व कुकुम डोसा और इडली, चीना उपमा, रागी सिवई, लघु कदन्न हलुआ या दलिया, लघु कदन्न नूडल्स, कोदों व कुटकी खीर, इत्यादि। खाने के लिए तैयार (आर.टी.ई.) लघु कदन्न आधारित खाद्य उत्पाद भी बाजार में उपलब्ध हैं, जैसे कि न्यूट्रिमिक्स चॉकलेट, बहु लघु कदन्न कुकीज, केक, खिचड़ी, फ्लेक्स, मुसली, मफिन, रोटी, चिकी, कुरकुरा, लस्सी, आइसक्रीम, रागी बॉल्स इत्यादि।

भौगोलिक आधार पर, वैश्विक लघु कदन्न बाजार को उत्तरी अमेरिका, यूरोप, एशिया प्रशांत, लैटिन अमेरिका, मध्य पूर्व और अफ्रीका में विभाजित किया जा सकता है। अफ्रीका, भारत और चीन में सभी प्रकार के कदन्नों की आम तौर पर खेती की जाती है। एशिया में, भारत प्रमुख तथा लघु कदन्नों का मुख्य उत्पादक है, जो मुख्य रूप से देश के उत्तर–पश्चिमी एवं दक्षिणी–पूर्व भागों में उगाया जाता है। एशिया में, नेपाल तथा भूटान भी प्रमुख लघु कदन्न उत्पादक देश हैं।

निष्कर्षः

भारतीय लोगों में खतरनाक दर से कुपोषण संबंधी बीमारियां, जीवन शैली विकार तथा जीर्ण बीमारियां बढ़ रही हैं। आहार इस तरह के विकारों को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा लघु कदन्न आधारित खाद्य उत्पादों को आहार में शामिल करके, महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है, जिससे रक्तचाप में कमी, हृदय रोग के खतरे में कमी, कैंसर की रोकथाम, मधुमेह में कमी, ट्यूमर में कमी होती है तथा मानव स्वास्थ्य में गिरावट को रोकने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त लघु कदन्न आधारित भोजन खनिज एवं विटामिन की कमी से भी लड़ता है, इसलिए छिपी भूख को भी कम करता है। हाल के दशक में आहार और स्वास्थ्य में कदन्नों के पौष्टिक महत्व के कारण, कई लघु कदन्न आधारित खाद्य उद्योगों ने लघु कदन्न उत्पादों का विकास एवं विपणन प्रारंभ किया है। लघु कदन्नों को पौष्टिक धान्य (न्युट्रासिरियल्स) के रूप में माना जाता है, इसलिए यह जीवन शैली सम्बन्धी विकारों, पुरानी बीमारियों और कुपोषण से लड़ने में सक्षम है।

असफलता कभी–कभी सफलता की स्तम्भ होती है।

हम संघर्षों और उनके समाधान द्वारा ही आगे बढ़ते है।

मोटा अनाज : संभावित न्यूट्रास्यूटिकल लाभ एवं व्यवसाय

मनोज कुमार त्रिपाठी[1], अनिल कुमार[2], देबन्या महापात्रा[3] एवं सुमेधा स. देशपांडे[4]

सारांश : भारत अंतर्निहित क्षमताओं के कारण तेजी से विकसित देश की श्रेणी में अग्रसर है। भारतीय अच्छे स्वास्थ्य और बिना गुणवत्ता वाले भोजन से अपने जीवन शैली एवं देश प्रगति में भागीदारी नहीं दे सकता। आज के परिप्रेक्ष्य में भारत में मधुमेह, उच्च रक्तचाप एवं मोटापा एक मेटाबॉलिक सिंड्रोम के रूप में विशाल रूप लेता जा रहा है। वर्तमान में भारत विश्व के ह्रदय रोग का लगभग 50 से 60 प्रतिशत वहन कर रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत को उन कुछ देशों की श्रेणी में रखा है एवं भविष्य की चेतावनी भी दी है की अगर जीवन शैली में बदलाव नहीं किया गया तो यहाँ के नागरिक कई विकारों से प्रभावित हो सकते हैं। यह रोग केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए ही नहीं बल्कि राष्ट्र के विकास में भी महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक बोझ के रूप में उभर रहे हैं। भारत में इस तरह के मेटाबॉलिक सिंड्रोम में भर्ती के लिए तीन प्रमुख कारक जिम्मेदार माने जा रहे हैं, पहला कारक भारतीयों के जींन में ह्रदय रोग एवं मधुमेह की अति संवेदनशीलता। दूसरा कारक अत्यधिक प्रतिस्पर्धा और गैर जटिल प्रकृति के कारण जीवन शैली में बदलाव। तीसरा प्रमुख कारण भोजन की आदतों में बदलाव जिसमें अत्यधिक पॉलिश चावल परिष्कृत गेहूँ का आटा और जंक फूड का भोजन में समायोजन एवं फाइबर युक्त भोजन, पोषक तत्व और खनिज का अभाव प्रमुख है।

प्रस्तावना :

मोटा अनाज प्रोटीन युक्त पोषक तत्वों से भरपूर डाइटरी फाइबर युक्त विटामिन और फाइटोकेमिकल से भरपूर अन्न है। मोटे अनाज के सेवन से यह बीमारी मध्य में मोटापा कब्ज की बीमारियों में स्वास्थ्य सुधार पाया गया है। मोटा अनाज पर्यावरण सहायक होता है जो गंभीर अवस्था में भी परिस्थितिक प्रणालियों के लिए उपयुक्त होता है। यह एक कुशल अनाज है जो जलवायु परिवर्तन, जैविक और स्थाई कृषि में प्रभावित नहीं होता, अतः इसे आज के परिपेक्ष में प्राथमिकता देनी चाहिए। इतने सारे गुणों के बावजूद भी हम मोटे अनाज की खेती और खपत पिछले 50 वर्षों से नहीं कर पा रहे हैं। इसका प्रमुख कारण प्रसंस्करण प्रोटोकॉल की कमी एवं इसके स्वास्थ्य लाभों के बारे में जागरूकता की कमी है। इसका निकट भविष्य में उत्पादन, ग्रामीण जीवन शैली और सार्वजनिक स्वास्थ्य में अत्यंत खतरनाक स्थिति पैदा होने की संभावना है।

मोटे अनाज के खाद्य माँग, निर्माण एवं आय के सुधार के रूप में हम देख सकते हैं। औद्योगिक कई ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ हम उपयुक्त भागीदारी निभाकर आय को बढ़ा सकते हैं जिसमें मीलिंग, खाद्य उपयोग, चारा उपयोग, ऊर्जा, शराब, स्टार्च एवं कई निर्यात शामिल है।

मोटा अनाज आर्थिक विकास के लिए एक स्थायी फसल–

बाजरा एक बहुमुखी एवं विविध अनाज की श्रेणी में आता है जो

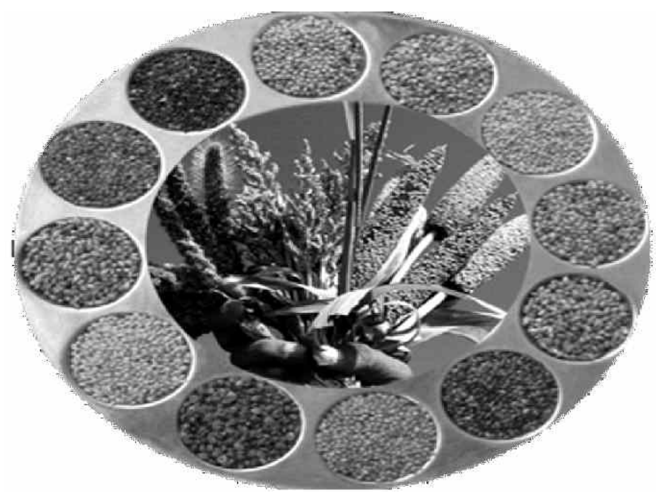

चित्र : मोटा अनाज एक भरोसेमंद खाना (स्रोत : www.millets.com)

कृषि के कई पारिस्थितकी में प्रमुख जगह रखता है। यह आमतौर पर कम वर्षा वाले स्थान, कम बढ़त वाले मौसम, खराब मिटटी के अनुकूल होता है।

अतः यह कई सीमान्त वातावरण में भी एक भरोसेमंद अनाज के रूप में उगाया जाता है। अधिकांश बाजरा सूखे की परिस्थिति में भी उपज देता है, परन्तु कुछ उच्च पैदावार के लिए अच्छी मिट्टी एवं नम स्थिति पर आधारित होते हैं। इस खाद्य फसल की उपज एवं बढ़ने के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है।

यह जल्दी परिपक्व भी हो जाती है। यह खाद्य फसल सदियों से पोषण सुरक्षा में सहायक रही है। बुन्देलखण्ड भी एक अनिश्चित

[1]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषि अभियान्त्रिकी संस्थान, भोपाल [2]निदेशक शिक्षा, रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी
[3]वरिष्ठ वैज्ञानिक, भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषि अभियान्त्रिकी संस्थान, भोपाल [4]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषि अभियान्त्रिकी संस्थान, भोपाल

वर्षा एवं खराब गुणवत्ता वाली मिट्टी बाहुल्य क्षेत्र है, जिसके लिए उपरोक्त फसल अर्थव्यवस्था सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। खाद्य फसलों के रूप में मोटा अनाज का उपयोग खाद्य आपूर्ति के अंतराल को भरने में योगदान करने के लिए महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व कर सकता है, कृषि में कई मशीनरी एवं प्रसंस्करण की मदद से उपज एवं उत्पादन को बढ़ा सकते हैं। प्रसंस्करण के माध्यम से कई महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थों को विकसित कर मूल्य संवर्धन कर सकते हैं।

कार्यात्मक खाद्य पदार्थों का विकास :

मोटा अनाज कार्यात्मक खाद्य पदार्थों की श्रेणी में आता है जो ना तो सिर्फ पोषण कार्यों में उपयोगी होता है अन्यथा स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी होता है जिसके उपयोग से पोषण में समृद्धि होती है एवं बीमारियों के जोखिम को कम करने में सहयोग मिलता है। मोटे अनाज स्वास्थ्य के लिए अद्वितीय लाभ प्रदान करते हैं क्योंकि इसमें प्रचुर मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्व विशेष रूप से खनिज और विटामिन बी और साथ में न्यूट्रास्युटिकल भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। अमेरिका एवं कई अन्य यूरोपी देशों में मोटे अनाज को दैनिक आहार के महत्वपूर्ण हिस्सें के रूप में मान्यता दी गई है जो मुख्यतः मल्टीग्रेन में एक प्रमुख घटक के रूप में उपयोग हो रहा है। मोटा अनाज कई और प्रमुख अनाज की तुलना में बेहतर साबित हो सकता है। बढ़ती जनसंख्या की स्थिति में गेहूँ तथा चावल की तुलना में मोटा अनाज भविष्य के लिए एक आशा है जो कि खाद्य समस्या को हल करने एवं कुपोषण के निवारण में एक प्रमुख वैकल्पिक अनाज की भूमिका निभा सकता है। मोटे अनाज में आवश्यक अमीनो अम्ल एवं एंटी ऑक्सीडेंट गुणों की प्रचुरता होती है। मोटे अनाज को प्रमुखतः विटामिन–बी, फोलिक अम्ल, फास्फोरस, आयरन एवं पोटेशियम की प्रचुरता के लिए जाना जाता है। फिंगर मिलेट में मक्के की तुलना में 16 गुना कैल्शियम की मात्रा पाई गई है। मोटा अनाज ग्लूटेन फ्री, पाचन में सरलता, प्रमुख रोगों से लड़ने की क्षमता एवं कई एंटी कैंसर कारक के लिए जाना जाता है।

न्यूट्रास्युटिकल औषधि खाद्य पदार्थ :

न्यूट्रास्युटिकल शब्द का उपयोग खाद्य सूत्रों से ऐसे बायो एक्टिव यौगिकों के लिए किया जाता है जो इसके पृथक रूप में रोगों के खिलाफ एक सुरक्षात्मक प्रभाव डालते हैं। न्यूट्रास्यूटिकल्स अलग–अलग पोषक तत्वों, आहार की खुराक और आहार से लेकर खाद्य पदार्थों, हर्बल उत्पादों और अनाज, सूप और पेय जैसे प्रसंस्कृत उत्पादों तक हो सकते हैं। न्यूट्रास्यूटिकल्स में स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले तत्व या प्राकृतिक घटक होते हैं जिनके शरीर के लिए संभावित स्वास्थ्य लाभ होता है। यद्यपि न्यूट्रास्यूटिकल की अवधारणा हाल ही में अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर रही है, इसकी जड़ें चिकित्सा की प्राचीन भारतीय प्रणाली, 'आयुर्वेद' से खोजी जा सकती हैं। यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भोजन, जो पोषण प्रदान करने के अलावा स्वस्थ स्थिति को बनाए रखने में मदद करता है, और बीमारियों की घटना को रोकता है, का सेवन करना चाहिए। भारत और चीन पारंपरिक खाद्य उत्पादों और न्यूट्रास्युटिकल्स के उत्पादन के लिए जाने वाले दो सबसे महत्वपूर्ण देश हैं। भारत में पारंपरिक भारतीय आयुर्वेदिक औषधियों के रूप में खाद्य पदार्थों और न्यूट्रास्युटिकल्स के सबसे सामान्य रूप उपलब्ध हैं; इनका विपणन अलग–अलग ब्रांड नामों के तहत किया जाता है।

निष्कर्षः

हाल के वर्षों में न्यूट्रास्युटिकल्स में रुचि बढ़ रही है जो स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं और आधुनिक चिकित्सा के विकल्प हैं। पौधों की प्रजातियों की विविधता पृथ्वी पर मौजूद हैं, जिनमें से एक में औषधीय गुण भी शामिल हैं। इन पौधों या उनके भागों के हर्बल औषधीय गुणों का उल्लेख 'आयुर्वेद' में भी किया गया है और इसका उपयोग मधुमेह, हृदय रोग, गठिया, हेपेटाइटिस, त्वचा विकार और यहाँ तक कि कैंसर जैसी कई बीमारियों के इलाज के लिए किया जाता है। निस्संदेह, इन उत्पादों में से कई में स्थायी शारीरिक कार्य और मूल्यवान जैविक गतिविधियां हैं। मोटे अनाज में कई फिनोलिक तत्व फेनोलिक अम्ल, फ्लेवेनॉयड्स, फाइटिंक अम्ल, कैरोटीनॉएड्स, टोकोफिरोल्स, फाइटोस्टेरोल पाए जाते हैं जो प्रमुखतः स्वास्थ्य में उपयोगी एवं न्यूट्रास्यूटिकल्स की तरह उपयोग में आते हैं।

> यदि तुम्हारे पास लौह शिराएं है और कुशाग्र बुद्धि है, तो तुम विश्व को अपने चरणों में झुका सकते हो।
>
> – स्वामी विवेकानन्द

कदन्न उत्पाद और उद्यमिता विकास

सुमेधा देशपांडे, एम.पी. त्रिपाठी, देबन्या माहापात्र एवं प्रवीण निशाद

सारांश : हमें ज्ञात होना चाहिए कि कदन्न फसलें घरेलू प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल होने वाला प्राचीन खाद्य पदार्थों में से एक हैं। एशिया में इसकी उपस्थिति लगभग 10000 वर्ष पूर्व मानी जाती हैं। अफ्रीका एवं भारत में कदन्न का उपयोग हजारों वर्षों से एक मुख्य भोजन के रूप में किया जाता रहा हैं।

कदन्न फसलें:–

भारत कदन्न फसलों का सबसे बडा उत्पादक देश है। यहाँ विभिन्न प्रकार की कदन्न फसलें जैसे मक्का, ज्वार, रागी, कोदो, कुटकी, कांगनी, सांवा, चेना, जई आदि की खेती की जाती हैं।

पोषण तथ्य:–

कदन्न अनाज में उच्च मात्रा में पोषण तत्व पाये जाते है तथा ग्लूटिन मुक्त होने के कारण इसे आसानी से पचाया जा सकता है। यह अनाज प्राकृतिक रूप से गर्म होता है इसलिए इसे ठंड एवं बरसात के दिनों में उपयोग करना ज्यादा लाभदायक है। ये सभी कदन्न अनाज स्वादिष्ट, हल्के मीठे एवं पोषक तत्वों से परिपूर्ण होते है। इनमें लगभग 15 प्रतिशत तक प्राटीन पाया जाता हैं।

तालिका:– कदन्न अनाज में उपस्थित पोषक तत्व

	ऊर्जा (किकै.)	कार्बो. (ग्रा.)	प्रोटीन (ग्रा.)	वसा (ग्रा.)	राख (ग्रा.)	कैल्सि. (मिग्रा)	आयरन (मिग्रा)	थायमिन (मिग्रा)	राइबो. (मिग्रा)	नाइ. (मिग्रा)
चावल	362	76.0	7.9	2.7	5.2	33	1.8	0.41	0.04	4.3
गेहूँ	348	71.0	11.6	2.0	12.9	30	3.5	0.41	0.10	5.1
ज्वार	329	70.7	10.6	3.1	14.2	25	5.4	0.38	0.15	4.3
बाजरा	363	67.0	11.8	4.8	20.4	42	11	0.38	0.21	2.8
सांवा	351	63.2	11.2	4.0	17.62	31	2.8	0.59	0.11	3.2
कांगनी	300	55.0	11.0	3.9	13.7	22	18.6	0.33	0.10	4.2
कोदो	353	66.6	9.8	3.6	17.0	35	107	0.15	0.09	2.0
कुटकी	329	60.9	9.7	5.2	15.08	17	9.3	0.30	0.09	3.2
रागी	336	72.6	7.7	1.5	18.8	350	3.9	0.42	0.19	1.1
चेना	364	63.8	12.5	3.5		8	2.9	0.41	0.28	4.5

स्त्रोत:– एफ.ए.ओ.

कदन्न आधारित खाद्य पदार्थ:–

कदन्न में कुछ पोषकनाशक तत्व जैसे टेनिन व फाइटिक अम्ल भी पाये जाते है जो प्रोटीन के पाचनशक्ति को प्रभावित करते हैं। कदन्न को प्रसंस्करित करने से ये कारक तथा गर्मताप से उपचार करने से पॉलीफेनोल एवं फाइटिक अम्ल कम हो जाते है, जिससे प्रोटीन एवं स्टार्च के पाचन क्षमता में वृद्धि होती है।

कदन्न की रोटी:–

हिमालय के तलहटी वाले दुर्गम इलाकों में रहने वाले लोग जो अपने अच्छे स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए जाने जाते है वे लोग भी अपने आहार में कदन्न अनाज को शामिल करते हैं। भारत के विभिन्न इलाको में कदन्न अनाज के आटे से रोटी बनायी जाती है एवं मुख्य भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है। जिस प्रकार गेहूँ के आटे से चपाती बनायी जाती है उसी प्रकार रागी, बाजरा,

भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकीय संस्थान,
भोपाल–462038

ज्वार आदि कदन्न अनाज के आटे से रोटियाँ बनायी जा सकती है।

बेकरी उत्पादः–

जिन लोगों को ग्लूटिन से समस्या है उनके लिए कदन्न एक अच्छा विकल्प है। कदन्न अनाज के आटे से रोटी, कुकीज व बिस्किट तैयार किए जा सकते है। कदन्न के आटे अपनी गुणवत्ता से परिपूर्ण होते हैं, इसी कारण से गेहूँ के आटे की जगह, कदन्न अनाज के मिश्रण से बनी आटे की उपयोग करने की सलाह दी जाती है। दाल एवं कदन्न अनाज के मिश्रण से तैयार बिस्किट में उच्च प्रोटीन की मात्रा होती है।

पॉप उत्पादः–

भारत में स्टार्च युक्त अनाज एक लोकप्रिय नाश्ते के रूप में शामिल है। आमतौर पर ये उत्पाद उच्च तापमान एवं 12–15 प्रतिशत नमी के अनाज से तैयार किये जाते है। कदन्न से तैयार पॉप उत्पाद में अत्यधिक पोषकगुण एवं पाचन क्षमता होती है।

लड्डूः–

कदन्न के लाई से लड्डू भी तैयार किये जा सकते है तथा पूरक के रूप में इसमें गुड व मूंगफली मिलाया जाता है।

अंकुरित अनाजः–

अनाज को अंकुरित करने से उसमें उपस्थित कुल प्रोटीन, राख, घुलनशीन शकर्रा, एस्काबिक अम्ल, रेसा, वसा आदि में उधार होता है। अंकुरित कदन्न अनाज को सलाद, बिस्किट, केक, रबडी सहित विभिन्न खाद्य पदार्थों में शामिल किया जा सकता है।

पेय पदार्थः–

रबाई, राजस्थान की एक लोकप्रिय पेय पदार्थ है। इसे बाजरा के आटे और छाछ को किण्वित करके तैयार किया जाता है। किण्वन करने से फाइटिक अम्ल की मात्रा कम हो जाती है।

अन्य उपयोगः–

कदन्न प्रोबायोटिक्स का एक अच्छा विकल्प है, इसलिए कदन्न आधारित विभिन्न शिशू आहार एवं मिष्ठान खाद्य पदार्थ विकसित किये जा रहे है। चूँकि इसमें प्रचूर मात्रा में प्रोटीन पाया जाता है, इसलिए इन अनाजो से प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थ तैयार किये जा रहे है। कुछ देशो में इसका उपयोग गोभी के रोल बनाने मे भी किया जाता हैं।

उद्यमिता विकासः–

कदन्न फसलों का प्रसंस्करण कर आय में वृद्धि के साथ–साथ पशुओ के लिए चारे के रूप में खाद्य सुरक्षा भी सुनिश्चित किया जा सकता हैं। कदन्न की प्राथमिक व द्वितीयक प्रसंस्करण तथा मूल्यवर्धण कर कृषक समुदाय अपनी आय में वृद्धि कर सकता है। जिन किसानों की भूमि कि प्रजनन क्षमता कम हो चुकी है तथा जिनके पास सिंचाई की सुविधा नही है उनके लिए कदन्न फसलें एक अच्छा विकल्प हैं।

निष्कर्षः

भा.कृ.अनु.प. के केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकीय संस्थान में कुछ कदन्नों के मिश्रण से विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार किये है जैसे ज्वार के मसाला फ्लेक्स, कोदो का हलवा मिक्स तथा खीर मिक्स, ज्वार का उपमा मिक्स आदि। ज्वार तथा बाजरा के आटे का संग्रहण क्षमता बढ़ाने हेतु भी तकनीक विकसित की गयी है, जिससे ज्वार के आटे को 45 दिनों तक एवं बाजरा के आटे को 21 दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। ज्वार के फ्लेक्स बनाने हेतु संस्थान में फ्लेकिंग मशीन, किण्वन पात्र और शुष्क आदि विकसित किये गये है जिसका उपयोग कर भावी उद्यमी बडे पैमाने पर उत्पादन कर आर्थिक दृष्टि से सक्षम बन सकते है तथा समाज को भी उपलब्ध करा सकते है।

सबसे उच्च कोटि की सेवा ऐसे व्यक्ति की मदद करना है जो बदले में आपको धन्यवाद कहने में असमर्थ हो।

*****

नुकसान से निपटने में सबसे जरूरी चीज है उससे मिलने वाले सबक को न भूलना। वो आपको सही मायने में विजेता बनाता है।

*****

जिव्हा को उसे व्यक्त करना चाहिए जो हृदय में है।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

रागी (फिंगर मिलेट) के निगमन और समग्र विकास द्वारा सूखाग्रसित बुन्देलखण्ड में पोषण सुरक्षा की संभावनायें

डी.सी. जोशी, आर.पी. मीणा, हनुमान राम एवं मनोज परिहार

सारांश : बुन्देलखण्ड क्षेत्र की विषम भौगोलिक स्थिति और वर्षा आधारित खेती को ध्यान में रखते हुये पूर्व में उन फसलों का चुनाव किया गया, जो कि कम पानी और सूखे की स्थिति में भी खाद्य व पोषण सुरक्षा प्रदान कर सकें परन्तु कालान्तर में व्यवसायीकरण के साथ इन फसलों की जगह नकदी फसलों ने ले ली और ये पारम्परिक फसलें धीरे–धीरे क्षेत्र से गायब हो गयी। इन्ही पारम्परिक फसलों में कदन्न फसलें प्रमुख हैं।

प्रस्तावनाः

कदन्न शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द "कदन्न" से हुई है, जिसका अर्थ है "निन्दित अन्न" अर्थात गरीब आदमी का भोजन। लेकिन आज के परिवेश में ये फसलें पोषक तत्वों की खदान मानी जाती है। यह एक फसल समूह है जिसमें ज्वार, बाजरा, फिंगर मिलेट (रागी) तथा अन्य मोटे अनाज जैसे झंगोरा (मादिरा), कौनी, चीना, कुटकी एवं कोदो इत्यादि फसलें आती है। प्रस्तुत आलेख में एक अतिमहत्वपूर्ण कदन्न फसल रागी के विभिन्न पहलुओं का विस्तारपूर्वक विवरण किया गया हैं। प्रायः रागी की खेती पिछड़े, जनजातीय क्षेत्रों में छोटे या मझोले किसानों द्वारा कम उपजाऊ भूमि में की जाती हैं। लेकिन पिछले 50 वर्षों में इस के उत्पादन क्षेत्र में निरन्तर कमी आ रही है जबकि यह फसल इन क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ पशुओं के लिए उत्तम चारा भी प्रदान करती है। विश्व भर में रागी और अन्य कदन्न फसलों का महत्व दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है। विश्व खाद्य संस्थान (एफ.ए.ओ.) के एक अनुमान के अनुसार जैव विविधता में अब तक लगभग 75 प्रतिशत ह्रास हो चुका है। सीमित फसलों के उत्पादन में वृद्धि तथा उन पर निर्भरता मानव सभ्यता के लिये संकटमय स्थिति उत्पन्न कर सकती है। वर्तमान में हो रहे जलवायु परिवर्तन एवं समस्याग्रस्त भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि, रागी जैसी फसलों के चुनाव एवं संरक्षण के महत्व को दर्शाती है जो कि प्रतिकूल परिस्थितियों में मानव के जीवनयापन के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। इस फसल के अधिक लोकप्रिय और व्यवसायिक न होने के निम्नलिखित कारण हैं।

1. अधिकतर इस फसल की खेती कम उपजाऊ भूमि पर की जाती है।
2. अधिक उपज के लिये उन्नत किस्मों तथा कृषि विधियों का प्रयोग आवश्यक हैं। अभी भी पुरानी किस्में तथा विधियाँ अपनाई जा रही है।
3. इस फसल की खेती में खादों का संतुलित प्रयोग नहीं किया जाता है।
4. इस फसल में उन्नत बीज उत्पादन तथा वितरण का संगठित कार्यक्रम नहीं है।
5. कतार में न बोकर यह फसल छिड़काव विधि से बोई जाती हैं। खेतों में पौधों की संख्या समुचित नहीं होती जिससे उत्पादन भी कम होता हैं।
6. रागी में प्रध्वंश रोग का प्रकोप अधिक होता है और फसल सुरक्षा के उपाय न अपनाने से उत्पादन पर गहरा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।
7. सामान्य तौर पर इस फसल की खेती निजी उपयोग के लिये की जाती हैं।

रागी (फिंगर मिलेट) का पोषण में महत्व :–

पोषक मान की दृष्टि से रागी महत्वपूर्ण फसल हैं। यह फसल पोषक पदार्थों के लिये उत्कृष्ट हैं। रागी में कैल्शियम, धान एवं गेहूँ की तुलना में क्रमशः 34 तथा 8 गुना अधिक पाया जाता है (तालिका–1)। खनिज लवण जिनका हमारे शरीर के विकास एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता में विशेष महत्व हैं, इस फसल में धान तथा गेहूँ से अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। साथ ही संतुलित अमीनो अम्ल की मात्रा इसे ज्यादा उपयोगी खाद्य पदार्थ बनाते हैं। रागी से बनाये गये उत्पादों का ''ग्लाइसमिक इन्डैक्स'' कम होता है, जिससे इन्हें मधुमेह के रोगियों के लिए बहुत अच्छी खुराक माना जाता हैं। गत वर्षों में इन पदार्थों की शहरी क्षेत्रों में काफी माँग बढ़ गयी है।

भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

तालिका–1: रागी में पोषक तत्व

	मंडुवा	धान	गेहूँ
प्रोटीन (ग्राम / 100 ग्राम)	7.3	6.8	11.8
वसा (ग्राम / 100 ग्राम)	1.3	0.5	1.5
उर्जा (किलो / कैलोरी)	328.0	345.0	346.0
रेशा (ग्राम / 100 ग्राम)	3.6	0.2	1.2
खनिज (ग्राम / 100 ग्राम)	2.7	0.7	1.5
कैल्शियम (मिलीग्राम / 100 ग्राम)	344.0	10.0	41.0
लाइसीन (ग्राम / 100 ग्राम प्रोटीन)	3.5	3.7	2.9
मिथयोनिन (ग्राम / 100 ग्राम प्रोटीन)	3.4	2.4	1.5
सिस्टीन (ग्राम / 100 ग्राम प्रोटीन)	2.2	1.4	2.2
ट्रिपटोफेन (ग्राम / 100 ग्राम प्रोटीन)	1.6	1.4	1.1
आइसोलुइसीन (ग्राम / 100 ग्राम प्रोटीन)	6.4	3.9	3.3

रागी उत्पादन की उन्नत शस्य विधियाँ

भूमि का चुनाव एवं तैयारी :–

बलुई दोमट मिट्टी वाली भूमि जिसमें अच्छा जल निकास हो इस फसल के लिये अच्छी रहती हैं। रबी की फसल काटने के बाद एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा एक–दो जुताईयां आवश्यकतानुसार देशी हल से करनी चाहिये। प्रत्येक जुताई के बाद नमी संरक्षण के लिये पाटा अवश्य लगाना चाहिये।

बुवाई एवं बीज दर :–

सामान्यतः रागी की बुवाई छिड़काव विधि से की जाती हैं परन्तु इसमें सभी बीज अलग–अलग गहराई पर गिरते हैं जिससे अंकुरण एक समान नहीं होता है। अच्छी फसल लेने के लिये रागी की बुवाई 20 सेमी दूरी पर पंक्तियों में करनी चाहियें। पौधें से पौधें की दूरी 7.5 से 10 से.मी. तक रखनी चाहियें। 3–4 सप्ताह में अतिरिक्त पौधों की छटनी कर देनी चाहिये। एक हेक्टेयर क्षेत्र में 10 किलोग्राम बीज का प्रयोग करना चाहियें। बुवाई से पूर्व 2 ग्राम / कि.ग्रा. बीज की दर से कार्बेन्डाजिम से बीजों का उपचार करना चाहियें। जैविक खेती की दशा में उक्त बीजोपचार 10 ग्राम / कि.ग्रा. बीज की दर से स्यूडोमोनास तथा ट्राइकोडर्मा के मिश्रण से करना चाहिये। बीजोपचार के उपरान्त 20 मिनट तक बीज को छाया में सुखाकर बुवाई करनी चाहियें।

मक्के के पॉपकार्न की तरह रागी के दानों की पोपिंग

रागी नमकीन बनाने का कृषकों को प्रशिक्षण

रोपण विधि :–

वर्षा के समय पर न होने के कारण बुवाई में विलम्ब होने पर रागी को पौध रोपण द्वारा उगाकर भरपूर उपज ली जा सकती हैं। इनकी रोपाई के लिए धान की भांति खेत में मथाई करने की आवश्यकता नहीं होती, जिससे इनकी रोपाई करने में कोई कठिनाई नही होती। रोपाई के लिए 25–30 दिन की पौध अच्छी रहती हैं। पौध की रोपाई ऐसे दिन करनी चाहिए जब वर्षा होकर रूकी हो अथवा शीघ्र वर्षा होने की सम्भावना हो। कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी सीधी बुवाई के समान ही रखनी चाहिए। एक स्थान पर कम से कम 2–3 पौधे अवश्य लगाने चाहिए रोपाई विधि से खेती करने में खरपतवार नियन्त्रण पर होने वाले व्यय में काफी कमी हो जाती है साथ ही पौधो की छटाई करने का अतिरिक्त कार्य भी नहीं करना पड़ता। रागी की शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की रोपाई जुलाई मध्य तक करके अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती हैं।

उर्वरक प्रयोग :–

आमतौर पर रागी की खेती बिना उर्वरक प्रयोग के की जाती हैं। अच्छी फसल लेने के लिये संस्तुत मात्रा में उर्वरक प्रयोग भी आवश्यक है। रागी में 40 कि.ग्रा. नत्रजन तथा 20 कि.ग्रा. फास्फेट प्रति हेक्टेयर की संस्तुति दी जाती हैं तथा 20 कि.ग्रा. पोटाश की भी अतिरिक्त संस्तुति दी जाती हैं। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा आधारीय रूप में बुवाई के समय ही देनी चाहिये। नत्रजन की शेष मात्रा खड़ी फसल में बाली आने से पूर्व देनी चाहिये परन्तु ध्यान रहे कि यूरिया का प्रयोग खड़ी फसल पर करते समय जमीन में पर्याप्त नमी हो।

खरपतवार नियंत्रण :–

रागी में उत्पादकता कम होने के कारणों में खरपतवारों की समस्या एक प्रमुख कारण हैं। ये भूमि से नमी, पोषक तत्वों, सूर्य की रोशनी आदि के लिये फसलों से प्रतियोगिता करते हैं। इसके लिये प्रथम निराई 20–25 दिनों के बीच अवश्य कर लेनी चाहिये तथा दूसरी 30–35 दिनों के बीच करनी चाहिये। यदि बुवाई के समय भूमि में नमी की उचित मात्रा हैं तो बुवाई से 2–3 दिन के अन्दर 0.75 कि. ग्रा. सक्रिय अवयव प्रति हेक्टेयर की दर से आइसोप्रोटुरोन का छिड़काव करना चाहिये तथा इसके 30 दिन बाद एक निराई करनी चाहिये। यदि चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की समस्या हो तो 2, 4–डी (सोडियम साल्ट) नामक रसायन का 1.2 कि.ग्रा. सक्रिय अवयव प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिये। सारांश में हम कह सकते हैं कि खाद्यसुरक्षा को बनाये रखने के लिये रागी एक उप्युक्त फसल हैं। ये खाद्यान्न ही नहीं वरना चारे के लिये भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। उन्नत बीजों का प्रयोग, खरपतवार नियंत्रण, उर्वरक प्रबन्धन, रोग एवं कीट प्रबन्धन आदि तकनीकों के इस्तेमाल से हम इसकी वर्तमान उत्पादकता को डेढ़ से दोगुना तक बढ़ा सकते हैं।

रोग नियंत्रण

झौंका (ब्लास्ट) रोग :–

इस रोग का प्रकोप पौध बढ़वार की प्रारम्भिक अवस्था से परिपक्व अवस्थाओं में होता है। पत्तियों में आँख व नाव के आकार के जलसिक्त धब्बे बन जाते हैं जो बीच में राख व किनारों पर भूरे रंग के होते है। तने की गर्दन व बालियों के डंठल पूर्ण या आंशिक रूप से काले पड़ जाते हैं। गर्दन से बालियाँ टूटकर गिर सकती हैं। अधिक प्रकोप होने पर बाली सूख सी जाती है जिसके कारण उपज में अत्यधिक क्षति होती हैं।

रोकथाम :–

- ❖ झौंका रोग से बचाव के लिये रोगरोधी किस्मों (वी.एल.–149 रागी, वी.एल.–146 रागी, वी.एल.–315 रागी, वी.एल.–324 रागी) का चुनाव सर्वोत्तम हैं।
- ❖ बोने से 24 घण्टे पूर्व बीजों को थीरम या मेंकोजेब या कार्बेन्डाजिम की 2.5–3 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
- ❖ पौधशाला में इस रोग के लक्षण दिखायी देने पर कार्बेन्डाजिम 0.05 प्रतिशत अर्थात आधा ग्राम दवा का एक लीटर पानी में घोल या एडीफेनफास 0.1 प्रतिशत अर्थात् 1 मिली दवा का 1 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। मेंकोजेब 0.25 प्रतिशत 2.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी भी रोग के नियंत्रण में सहायक रहा हैं।
- ❖ पुष्पावस्था में गर्दन एवं बालियों में झोंका का प्रकोप होने पर ऊपर लिखे फंफूदी नाशकों का प्रयोग करना चाहिए। जरूरत के अनुसार 10–12 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।
- ❖ संस्तुत मात्रा से अधिक नत्रजन नहीं देना चाहिए।

बालियों में झोंका का प्रकोप

गर्दन में झोंका का प्रकोप

भूरी चित्ती या पत्तियों का झुलसा :–

झौंका की भांति यह रोग भी पौध अवस्था से परिपक्व अवस्था तक लग सकता है। प्रारम्भ में पत्तियों में छोटी–छोटी बिन्दी की तरह भूरे धब्बे बनते हैं जो आकार में बढ़कर आपस में मिल जाते हैं व पत्तियों को सुखा देते हैं। इस रोग का बालियों व दानों पर भी आक्रमण होता है जिससे उपज में कमी आ जाती हैं।

रोकथाम :–

- ❖ रोगरोधी किस्मों का प्रयोग सर्वोत्तम रहता हैं।
- ❖ ऊपर लिखे फफूंदीनाशक (थिरम / मैंकोजेब / कार्बेन्डाजिम) के द्वारा बीज को उपचारित करके बोयें।
- ❖ पौधे पर रोग के लक्षण दिखाई देने पर 0.25 प्रतिशत मैंकोजेब का 10–12 दिन के अन्तर पर जरूरत के अनुसार छिड़काव करें।

विषाणु जनित रोगः–

इस रोग के लगने से पौधे छोटे रह जाते हैं और शाखायें अधिक हो जाती हैं। ग्रसित पौधों पर बालियाँ भी नही बन पाती। यदि बाली बन भी गयी तो दाने नही बन पाते हैं।

रोकथाम :–

- ❖ उन्नतशील रोगरोधी प्रजातियों में उक्त बीमारी का प्रकोप कम पाया जाता हैं। अतः उन्नत किस्मों को ही बोना चाहिये।

तना बेधक कीट :–

गुलाबी तना बेधक कीट रागी में प्रमुख रूप से पाया जाता हैं। वयस्क कीट एक पतंगा होता है जिसकी सूंडियों द्वारा फसल को हानि पहुंचायी जाती हैं।

रोकथाम

- ❖ तना बेधक रोधी सहनशील प्रजातियों को बोना चाहियें।
- ❖ तना बेधक कीट के नियंत्रण के लिये निम्नलिखित में से किसी एक दवाई का छिड़काव 10–12 दिनों के अन्तर पर जरूरत के अनुसार करना चाहिए।
- ❖ थायोडान 35 ई.सी. (एण्डोसल्फान) अथवा इकालैक्स 25 ई. सी. (क्वीनालफॉस) एक लीटर पानी में 2 मि.ली. दवा अथवा न्यूवाक्रान 40 ई.सी. (मोनोक्रोटोफास) एक लीटर पानी में एक मि.ली. दवा के हिसाब से एक नाली के लिये 15 लीटर पानी में बनी दवा पर्याप्त रहती हैं

कदन्न फसलों का कटाई उपरान्त प्रबन्धन :–

कदन्न फसलों का कटाई उपरान्त प्रबन्धन एक अत्यन्त मुश्किल प्रक्रिया हैं। जो की इन फसलों के क्षेत्रफल में गिरावट का एक मुख्य कारण भी हैं। थ्रेसिंग (तड़ाई) एक अत्यन्त परिश्रम वाला कार्य हैं। जो की मुख्यतः महिला कृषकों द्वारा किया जाता हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा ने एक विशेष थ्रेसर औंर प्रलल का निर्माण किया हैं। यह विवेक मिलेट थ्रेसर सभी कदन्न फसलों की तड़ाई के लिए उपयुक्त हैं। इस थ्रेसर द्वारा रागी की थ्रेसिंग और प्रलिंग एक साथ की जाती हैं। जबकी मादिरा, कौनी और चीना की थ्रेसिंग अलग–अलग की जाती हैं। रागी के संदर्भ में इस की तड़ाई क्षमता 60 से 80 किलो ग्राम प्रति घंण्टा तथा प्रलिंग कि क्षमता 80 से 100 किलो ग्राम प्रति घण्टा मापी गई है। इस मशीन के दो मॉड़ल विकसित किये गये हैं। पहला बिजली से चलता हैं तथा दूसरा इंजन से चलता हैं। यह मशीन कदन्न फसलों के कटाई उपरान्त प्रबन्धन में अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई हैं।

रागी की पारम्परिक विधि द्वारा मड़ाई और रागी थ्रेसर

संक्षेप मे रागी के उत्पादन एवं प्रचलन के लिए निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना अति आवश्यक हैं।

1 उन्नत प्रजातियों का उपयोग
2 बीजोत्पादन को बढ़ावा देना, तथा वितरण की उचित व्यवस्था
3 इन अनाजों का उचित दाम तथा बिक्री हेतु सुलभ बाजार
4 मूल्य संवर्धित उत्पादों को बढ़ावा देना,
5 कदन्न फसलों के प्रसंस्करण इकाइयों के प्रशिक्षण व प्रदर्शन को उपलब्ध करवाना।

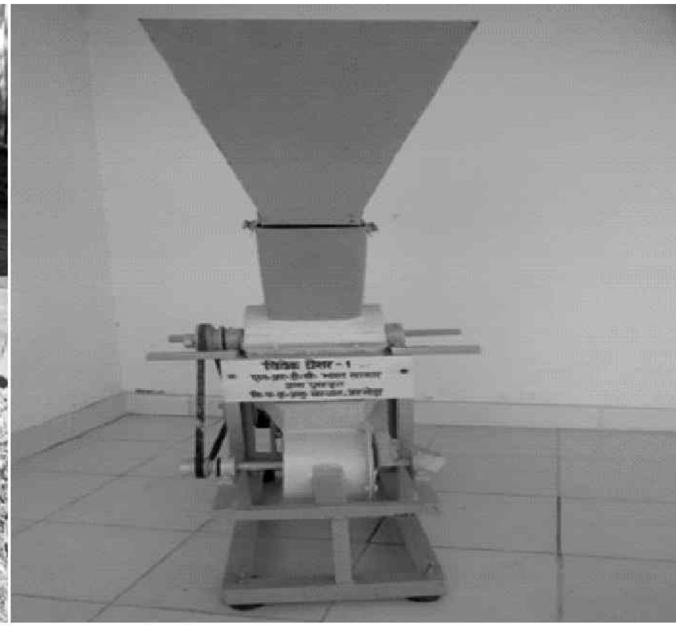

रागी की पारम्परिक विधि द्वारा मड़ाई और रागी थ्रेसर

निष्कर्षः

बुन्देलखण्ड क्षेत्र उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के 14 जिलों के लगभग सत्तर हजार वर्ग किमी में फैला हुआ हैं। जो अपनी भौगोलिक और सांस्कृतिक विशेषता के लिये जाना जाता हैं। प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र के स्थानीय समुदायों के सामाजिक और आर्थिक परिवेश के उत्थान में कृषि का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। एक अनुमान के अनुसार इस क्षेत्र की कुल कृषि योग्य भूमि का सत्तर प्रतिशत भू–भाग वर्षा पर आधारित हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा की कमी, भू–जल स्तर में निरन्तर गिरावट व क्षणभंगुर पारिस्थिति के कारण कृषि एक लाभ का व्यवसाय नहीं रह गया हैं। जिसके कारण इस क्षेत्र की गरीबी में काफी वृद्धि हुई हैं और महानगरों की ओर पलायन काफी तेजी से बढ़ रहा हैं। उदाहरण के लिये इस क्षेत्र के लगभग सभी जिलों में वर्ष 2003 से 2010 के बीच भयंकर सूखा पड़ा हैं। जिससे खेती की स्थिति और भी भयावह हो गयी हैं।

एक कहावत है – 'उत्तम करें कृषि, मध्यम करें व्यापार और सबसे छोटे करें नौकरी' ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि कृषि करने वाले लोग प्रकृति के सबसे करीब होते है ओर जो प्रकृति के करीब हो वह तो ईश्वर के सबसे करीब होता है।

*****

कृषि में व्यवसाय की असीम सम्भावना है, लेकिन बहुत से लोग इसे छोटा मानते है। जिसके कारण इसमें ज्यादा पैसा नहीं लगाना चाहते। लेकिन आपने भी बहुत से ऐसे किसानों, पशुपालन करने वालों के बारे में सुना होगा जो लाखों कमा रहे है।

मंडुआ की वैज्ञानिक विधि से खेती

राकेश सिंह सेंगर, आलोक कुमार सिंह एवं अभिषेक सिंह

सारांश : मंडुआ को मडिया, रागी, फिंगर मिलेटस आदि नामों से जाना जाता है इसका वानस्पतिक नाम *एलुसिन कोरकाना* है। भारत के अनेक राज्यों में इसकी खेती खरीफ के मौसम में की जाती है, इनमें झारखंड प्रमुख है। यह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कम देख–भाल होने पर अच्छी पैदावार देने वाली फसल के रूप में जानी जाती है। अच्छे गुणों के साथ–साथ पौष्टिकता से भरपूर यह फसल स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोगों का ध्यान आकर्षित कर रही है। मंडुआ में प्राकृतिक रूप से काफी मात्रा में कैल्शियम पाया जाता है और यह शरीर के द्वारा सरलता से अवशोषित कर लिया जाता है, इससे बच्चों में हड्डियों का विकास एवं वयस्कों में हड्डियों में मजबूती प्रदान होती है। मंडुआ पौष्टिक होने के साथ–साथ सस्ता एवं सुपाच्य भी होता है इसमें रेशा भी पाया जाता है जिसकी वजह से कब्जियत की शिकायत को कम करने में यह सहायता करती है। मंडुआ रागी युक्त आहार कम ग्लाइसेस मिकइंडेक्स वाला होता है। कैल्शियम व अन्य खनिज तत्वों की प्रचुर मात्रा होने के कारण ऑस्टियोपोरोसिस से संबंधित बीमारियों तथा बच्चों के आहार हेतु विशेष रूप से लाभदायक होता है।

प्रस्तावना :

मंडुआ की फसल में सूखे एवं खरपतवार के प्रति काफी सहनशीलता होती है यही गुण इस फसल को वर्षा स्थित क्षेत्रों के लिए उपयोगी बनाता है। मंडुआ को बुन्देलखण्ड क्षेत्र में आसानी से उगाया जा सकता है और अच्छी पैदावार ली जा सकती है। मंडुआ को उपजाऊ भूमि में धान के साथ अन्तः फसल के रूप में भी उगाया जा सकता है। परीक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि धान की दो पंक्तियों के साथ मंडुआ की दो पंक्तियाँ लगाकर दोनों फसलों की अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। धान की फसल नहीं लगा पाने की अवस्था में मंडुआ की फसल को आकस्मिक फसल की तरह लगाया जा सकता है।

कैसे करें बीज उपचार?

मंडुआ को बोने से पहले उसका बीज उपचार कर लेना जरूरी होता है इसके लिए प्रति किलो ग्राम बीज में 2–2.5 ग्राम कार्बेन्डाजिम / कार्बोक्सिन / क्लोरोथेलोनिल से उपचारित करने के उपरांत ही बुआई करना चाहिए। बुआई के लिए दो विधियाँ प्रचलित हैं, सीधी बुवाई और पौधा उखाड़ कर पौध रोपण, (धान की फसल की तरह लगाना) आदि। यदि सीधी बुवाई की बात करें तो कतारों में 20 सेंटीमीटर की दूरी रखते हुए इसकी बुवाई की जा सकती है। 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तथा पौध प्रति रोपण से की जाने वाली बुआई के लिए 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है, अगर पौधशाला में पौध तैयार कर प्रतिरोपण किया जाए तो प्रति हेक्टेयर क्षेत्र के लिए सात से आठ किलोग्राम बीज ही पर्याप्त रहता है। प्रतिरोपण के लिए कतार से कतार की दूरी 20 सेंटी मीटर तथा पौध से पौध की दूरी 10 सेंटीमीटर रखना अच्छा माना गया है खरीफ मौसम के लिए बुवाई का उचित समय जून में मानसून के प्रारंभ होने पर है प्रतिरोपण के लिए पौधे की आयु 25 से 28 दिन की होनी चाहिए।

मंडुआ की उन्नत शील प्रजातियाँ :

मंडुआ की उन्नत शील प्रजातियों में जी.पी.यू.–45, शुभ्रा (ओ.यू.ए.टी.–2), चिलिका (ओ.ई.बी.–10), भैरवी (बी.एम. 9–1), बी.एल.–149, इत्यादि प्रजातियाँ हैं। यह 105–120 दिनों में तैयार होकर 22–37 कुंतल प्रति हेक्टेयर उपज देती हैं, उपज क्षमता प्रजातीय तथा परिपक्वता अवधि पर निर्भर करती है।

कितनी मात्रा में दे खाद एवं उर्वरक?

मंडुआ की खेती के लिए खाद एवं उर्वरक के संबंध में एक बात यह है कि मृदा की उर्वरा शक्ति की जाँच करने के बाद उनकी अनुशंसा की जाए तो बेहतर रहेगा। एक साधारण भूमि के लिए 2.5 टन गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की अंतिम जुताई के समय पर देना ठीक रहता है। उर्वरकों में कम अवधि में तैयार होने वाली सीधी बुवाई करने की स्थिति में 20:30:20 किलोग्राम नत्रजन फास्फोरस एवं पोटैशियम प्रति हेक्टेयर तथा प्रति रोपण की स्थिति एवं लंबी अवधि वाले प्रदेशों के लिए यह अनुशंसा 40:30:20 के अनुपात में की गई है नत्रजन की 25 प्रतिशत एवं फास्फोरस तथा पोटेशियम की पूरी मात्रा बुआई या रोपाई के समय तथा नत्रजन की 50 प्रतिशत मात्रा बुवाई या रोपाई के 25 दिन बाद तथा 25 प्रतिशत मात्रा 35 से 40 दिनों बाद डालनी चाहिए।

कृषि प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार बल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ–250110

कैसे करें खर पतवार नियंत्रण?

मंडुआ की फसल में खरपतवार की समस्या के नियंत्रण के लिए जरूरी है कि समय–समय पर उसकी निराई गुड़ाई करते रहें। पहली निराई 21 से 25 दिन बाद और दूसरी उसके 15 दिनों बाद करने की अनुशंसा की गई है। ज्यादा पौध होने की स्थिति में छटनी करके जरुरत से ज्यादा पौधों को निकालने की आवश्यकता होती है। यह कार्रवाई 12 से 15 दिन के बाद कर लेना चाहिए। रोपने के 15 से 20 दिनों बाद पहली निराई–गुड़ाई कतारों के बीच डच को चलाकर करें। रसायनों के प्रयोग से खरपतवार का नियंत्रण किया जा सकता है। इसके आइसो प्रोटोरॉन नामक दवा का 1 लीटर मात्रा 500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 48 घंटों के अंदर छिड़काव करना चाहिए। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की अधिकता होने पर 2, 4–डी नामक दवा का एक किलोग्राम मात्रा 600 लीटर पानी में घोलकर 20–25 दिनों बाद छिड़काव करना चाहिए।

कैसे करें रोग नियंत्रण?

इसकी फसल में धान की तरह झुलसा रोग का प्रकोप पाया जाता है और कभी–कभी यह बहुत हानिकारक होता है। पत्तियों पर गोल गोल या अंडाकार भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। बाद में यह धब्बे राख जैसे दिखने लगते हैं इसके लिए रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे जीपीयू–40 एवं जीपीयू–48 लगाना चाहिए। कार्बेंडाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए, बीज उपचार कर अनेक प्रकार के रोगों से भी बचा जा सकता है।

कैसे करें कीट नियंत्रण?

मंडुआ की फसल में कीट कभी–कभी समस्या पैदा कर देते हैं, जिसके कारण उत्पादन में कमी आती है। मंडुआ में निम्नलिखित कीट प्रमुख रूप से हानि पहुंचाते हैं।

गुलाबी तना छेदक :

इसका सूंडिया मंडुआ के तने को छेदकर अंदर खोखला कर देती हैं और मध्य वाला तना भूरा हो जाता है। कल्लों के निकलने की अवस्था में डेड हर्ट के लक्षण प्रदर्शित होते हैं इसके नियंत्रण के लिए प्रकाश प्रपंच का प्रयोग प्रति हेक्टेयर में तीन से चार बार की संख्या में किया जा सकता है। ट्राइकोडर्मा पैरासाइट के अंडों से बनी ट्राईकोकार्ड को पत्तों में स्टेपल्स की मदद से भी स्टैपल किया जा सकता है, इनसे निकलने वाले पैरासाइट्स कीट के लारवा को नष्ट करते हैं। फॉस्फोमिडोंन दवा की 500 मि.ली. मात्रा 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है यह कीट नियंत्रण करने में सक्षम पाई गई है।

कटवा किट :

यह कीट जड़ों, तना और पत्तों को भी काटकर नुकसान पहुंचाते हैं इसके नियंत्रण के लिए साफ सफाई का ध्यान रखना अति आवश्यक है। फसल अवशेष एवं खरपतवार को नष्ट करने के लिए लाभकारी फफूंद बेवेरिया बेसियाना का छिड़काव 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से करने से नियंत्रण पाया जा सकता है। रसायनों में क्लोरोपायरी फॉस 1 लीटर दवा 500 से 600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से भी अच्छे परिणाम मिलते हैं।

लाही कीट :

यह समूह में रहने वाले कीट हैं यह मंडुआ की फसल की पत्तियों कोमल डंठलों तथा तने का रस चूसकर फसल को कमजोर बना देते हैं। पौधों पर चींटियों की उपस्थिति लाही के आक्रमण को इंगित करती है। लाही के नियंत्रण के लिए डायमेथोएट दवा का 1 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में मिलाने के बाद छिड़काव कर देना चाहिए।

कितना पोषक है मंडुआ?

प्रति 100 ग्राम आहार एवं 12 प्रतिशत नमी की उपस्थिति में मंडुआ में पोषक तत्व की मात्रा

प्रोटीन	7.3 प्रतिशत
वसा	1.3 प्रतिशत
स्टार्च	59.0 प्रतिशत
राख	3.0 प्रतिशत
खनिज	2.7 प्रतिशत
रेशा	3.6 प्रतिशत
कार्बोहाइड्रेट	72.6 प्रतिशत
कैल्शियम	350 मिलीग्राम
लोहा	3.90 मिलीग्राम
राइबोलेफिन	0.19 मिलीग्राम
नियासिन	1.1 मिलीग्राम
ऊर्जा	306 किलोकैलोरी

कब करें कटाई?

प्रजातियों की परिपक्वता अवधि के अनुसार कटाई की जाती है, बालियों के पकने पर कटाई कर तीन से चार दिनों तक खलिहान में धूप से सुखाकर देनी चाहिए, फिर साफ–सफाई कर इसे भंडारित करें। मंडुआ की फसल कम दिनों में तैयार होकर अच्छी उपज देती है इसमें सेहत के भी अनेक राज छुपे

हैं यह एक विशिष्ट गुणों वाली फसल है जिसको अपनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्षः

यह सभी प्रकार की मृदा में उगाई जा सकती है जिस मृदा में अच्छी जीवांश की मात्रा हो तथा जल निकास की व्यवस्था हो उसमें उगाई जा सकती है। हालांकि यह कुछ हद तक जल जमाव भी बर्दाश्त कर सकती है। जमीन की तैयारी के लिए तीन से चार बार खेत की अच्छी जुताई कर के पाटा चला दें। गोबर की सड़ी खाद या कंपोस्ट प्रति हेक्टेयर 2.5 टन की दर से खेत में मिला दें तथा फसल की बुवाई से पूर्व बीज उपचार कर लेना अति आवश्यक है।

मंडुए के बीज-दानों से लदा मंडुए का पौधा

खेत में लहलहाती मंडुए की फसल

एक समय में एक काम करो, और ऐसा करते समय अपनी पूरी आत्मा उसमें डाल दो और बाकी सब भूल जाओ।

❋❊❋❊❋

जब तक आप खुद पर विश्वास नहीं करते तब तक आप भगवान पर विश्वास नहीं कर सकते।

❋❊❋❊❋

चिंतन करो, चिंता नहीं, नए विचारों को जन्म दो।

❋❊❋❊❋

हम वो है जो हमे हमारी सोच ने बनाया है, इसलिए इस बात का ध्यान रखिये कि आप क्या सोचते है। शब्द गौण है। विचार रहते है, वे दूर तक यात्रा करते है।

❋❊❋❊❋

जैसा तुम सोचते हो, वैसे ही बन जाओगे। खुद को निर्बल मानोगे तो निर्बल और सबल मानोगे तो सबल बन जाओगे।

बुन्देलखण्ड के बदलते जलवायु परिदृश्य में पोषण सुरक्षा हेतु गैर परंपरागत फसल रामदाना की अपार संभावनायें

डी.सी. जोशी, हनुमान राम, आर.पी. मीणा एवं मनोज परिहार

सारांश : बुन्देलखण्ड एक कठोर चट्टान वाला क्षेत्र है जिसमें अपर्याप्त भूजल संसाधन हैं, बुनियादी सुविधाओं का अभाव है, उन्नत प्रौद्योगिकियों तक पहुँच का अभाव है, कम उत्पादकता के साथ बाजार और इनपुट का भी अभाव हैं। इस क्षेत्र की औसत वर्षा 800–900 मिमी. हैं, लेकिन पिछले छह वर्षों के दौरान इस क्षेत्र में केवल 400–450 मिमी. वार्षिक वर्षा हुई। मानसून का जल्दी तथा देर से आना और बारिश का असमान वितरण किसानों की फसलों के लिए गंभीर चिंता का कारण बनता जा रहा हैं। पिछले 8 वर्षों से यह क्षेत्र गंभीर सूखा समस्याओं का सामना कर रहा है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में कृषि जो ज्यादातर वर्षा पर निर्भर हैं और किसानों की मुख्य आजीविका हैं, को खतरों का सामना करना पड़ रहा हैं। इस क्षेत्र में कृषि उत्पादन लगातार कम हो रहा हैं। वर्ष 2000 में, यह क्षेत्र राज्य के कुल खाद्यान्न उत्पादन का लगभग 15 प्रतिशत योगदान देता था, जो अब घटकर केवल 7 प्रतिशत रह गया हैं। जलवायु परिवर्तन और वर्षा की अनियमितता के कारण, खाद्य सुरक्षा के लिए जाना जाने वाला यह क्षेत्र अब पोषण असुरक्षा और पलायन का प्रतीक बन गया हैं। इस गंभीर परिस्थिति में गैर परंपरागत नकदी फसलें जो कि कम पानी औंर कम उर्वराशक्ति वाली भूमि पर भी अच्छी पैदावार देती हो, को बुन्देलखण्ड में प्रचलित फसल चक्रों में सम्मिलित करना आवश्यक हो गया हैं। वर्तमान में बुन्देलखण्ड की वर्षा आधारित खेती के लिये कदन्न (मोटे अनाज) व स्यूडोसीरियल (छद्म अन्न) एक उपयुक्त विकल्प हो सकते हैं। वास्तव में ये फसलें इस क्षेत्र में आजीविका सुरक्षा और पलायन रोकने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। प्रस्तुत आलेख में ऐसी ही एक अति प्राचीन और महत्वपूर्ण छद्म अन्न फसल रामदाना या चौलाई की चर्चा की गयी हैं।

प्रस्तावना

रामदाना को अंग्रेजी भाषा में एमरन्थ ग्रेन के नाम से जाना जाता हैं। वास्तव में एमरन्थ ग्रीक भाषा का शब्द हैं जिसका मतलब होता हैं "अमरत्व" या कभी ना मरने वाली फसल, यह नाम इसको इसमें पाये जाने वाले भरपूर एवं उत्कृष्ट पौष्टिक गुणों की वजह से दिया गया हैं। रामदाना एमरेन्थेसी कुल का एक पौधा हैं जो वर्तमान में विश्व के समस्त महाद्वीपों में वृहद जलवायु स्थितियों में उगाया जाता है।

रामदाना का पौधा सीधा लगभग 1.5 मीटर ऊँचाई तनायुक्त पौधा होता हैं। इसके पत्ते चारो ओर से कोण अण्डाकार होते हैं। इसके फूल गुलाबी रंग के एकलिंगी होते हैं। इसके फल के बीज छोटे अर्धगोलाकार पीले सफेद रंग के होते हैं। मूल रुप से दक्षिण अमेरिका, मध्य अमेरिका तथा मैक्सिको की खरपतवार प्रजातियों से चयनित इस फसल के उत्पादन का वर्णन विश्व की कुछ प्राचीन सभ्यताओं में मिलता है। ईसा से लगभग 4000 वर्ष पूर्व इस फसल का भोजन में उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात 18 वीं सदी में इसके यूरोप में शोभाकारी पौधे, अफ्रीका में शाकभाजी तथा भारत, नेपाल व श्रीलंका में खाद्यान्न के रुप में प्रयोग हेतु लाये जाने का उल्लेख है। भारतीय उप महाद्वीप से ही इसका प्रसार दक्षिण पूर्व एशिया तथा अफ्रीका के अनेक देशों में विभिन्न यात्रियों द्वारा किया गया।

प्रारम्भिक अवस्था में इस फसल का प्रयोग सब्जी हेतु भी किया जाता है तथा इसकी पत्तियाँ विटामिन ए तथा सी का अच्छा स्त्रोत हैं। भारत में इसके दानों को फुलाकर गुड़ में मिलाकर लड्डू, पीसकर रागी के आटे में मिलाकर रोटी तथा दूध में मिलाकर खीर के रुप में प्रयोग किया जाता है तथा विशेष व्रत उत्सवों में इसे फलाहार के रुप में लिया जाता हैं। अक्सर उपवास के दौरान लोग राजगिरा, चौलाई या रामदाने के आटे से तैयार पूडी, परांठा या अन्य चीजें बनाकर सेवन करते हैं। राजगिरा या रामदाना अनाज नहीं है इसलिये लोग इसे उपवास के दिनों में खाते हैं क्योंकि यह स्वास्थवर्धक गुणों से भरा हुआ है और शरीर को ताकत देता हैं।

रामदाना की फसल ऊष्ण से लेकर शीतोष्ण जलवायु के शुष्क क्षेत्रों की दशाओं में आसानी से उगायी जा सकती हैं। यह फसल खरपतवार की तरह तुरन्त बढ़ने वाली है तथा इसमें प्रति पौधा लगभग 5 लाख बीज उत्पन्न होते हैं। भारतवर्ष में रामदाना प्रायः हर क्षेत्र में उत्पादित कि जाती हैं। दक्षिण भारत में यह फसल शाकभाजी हेतु तथा उत्तर पश्चिमी हिमालय क्षेत्र विशेषकर उत्तराखण्ड में खाद्यान्न के रुप में यह एक पारम्परिक फसल है। रामदाना परिवार की 60–70 प्रजातियाँ दुनिया भर में वितरित है।

भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखंण्ड

उनको उपयोग के आधार पर दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया हैं। रामदाना (बीज) और पत्तेदार (सब्जी)। अनाज रामदाना की तीन प्रजातियाँ हैंः *ए. हाइपोकॉन्ड्रिअस, ए. क्रयुन्एट्स,* और *ए. कॉडैटस,* (चित्र संख्या 1) पत्तेदार एमरेन्थस लम्बे हरे रंग के, कोमल पत्तों व हरे पत्तों और रसीले तनों के लिए उगाए जाते है। दो महत्वपूर्ण पत्तेदार रामदाना हैंः *ए.लिविडस* (छोटी चौलाई) और *ए. ट्राइकलर* (बड़ी चौलाई)।

रामदाना के पौधे आमतौर पर अपनी उत्कृष्ट प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया के कारण सूखा सहिष्णुता को बढ़ाता है। अपने उत्कृष्ट गुणों के कारण यह फसल एक बार फिर से उभर रही है और दुनिया भर में भोजन और पोषण सुरक्षा के लिए काफी संभावनाएं दिखा रही है। यह व्यापक रूप से अनुकूलन क्षमता के साथ एक स्व–परागण वाली फसल है और यह समशीतोष्ण से उष्णकटिबंधीय स्थितियों तक उगाई जा सकती है। पिछले कुछ दशकों में खाद्य विविधीकरण, औषधि उपयोग, पशु आहार और वाणिज्यिक स्टार्च उत्पादन के लिए पोषण विकल्प के रूप में इसके विविध उपयोगों की रूचि बढ़ी है। इसके अलावा, रामदाना की अन्य वाणिज्यिक फसलों पर कृषि श्रेष्ठता है, जो उच्च तापमान, सूखे और कम इनपुट खेती की माँग जैसे प्रतिकूल और विविध जलवायु परिस्थितियों में अनुकूलन करने की क्षमता रखती

ए. हाइपोकॉन्ड्रिअस

ए. कॉडैटस

ए. क्रयुएन्टस

रामदाना के पौष्टिक और औषधीय गुण :–

रामदाना में अनाज फसलों की तुलना में अधिक पोषक तत्व पाये जाते हैं और इसमें प्रमुख अनाज फसलों की तुलना में कैल्शियम की औसत मात्रा का लगभग तीन गुना अधिक है और यह लौह, मैग्नीशियम, फास्फोरस और पोटेशियम में उच्च है। इसके प्रोटीन में ग्लूटेन के अभाव के कारण यह उन व्यक्तियों के लिए लाभदायक है जिन्हें ग्लूटेन से एलर्जी हो जाती है। रामदाना में आवश्यक अमीनो अम्ल और प्रोटीन की गुणवत्ता पारंपरिक खाद्य स्त्रोतों जैसे चावल, गेहूँ, जौं और मक्का से बहुत अधिक हैं। अधिकतर अनाज फसलों के दानों में आमतौर पर आवश्यक अमीनो एसिड लाइसिन की कमी होती है और इनमें ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन और वेलीन (तालिका–1) की अधिकता होती है, जबकि रामदाना, लाइसिन (5.2–6.1 ग्राम / 100 ग्राम प्रोटीन) से भरपूर होता हैं। इसी तरह, रामदाना में गंधक युक्त अमीनो अम्ल (2.6–5.5 ग्राम / 100 ग्राम) तुलनात्मक रूप से अधिकांश दलहनी फसलों (1.4 ग्राम / 100 ग्राम) की तुलना में अधिक हैं। यह एक अत्यधिक मूल्यवान फसल है क्योंकि इसका बीज प्रोटीन में संतुलित अमीनो अम्ल तथा इसके बीजों के तेल में स्क्वैलीन पाया जाता हैं, जो सौंदर्य प्रसाधन उद्योग में उपयोग किया जाता है। रामदाना में कई औषधीय गुण होते हैं जैसे कि एंटी–डायबिटिक, एंटी–हाइपरलिपिडेमिक, स्पर्मेटोजेनिक, एंटीकोलेस्टरोलमिक प्रभाव और एंटीऑक्सिडेंट और एंटीमाइक्रबियल गतिविधि। अपनी धीमी गति की पाचन क्षमता के कारण यह रूधिर में ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रण में रखता हैं, जिस कारण यह मधुमेह के रोगियों के लिये एक उत्तम आहार हैं। संक्षेप में रामदाना के दाने और पत्तियाँ अन्य अनाज फसलों की तुलना में उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, वसा, कैल्शियम, पोटेशियम तथा फॉस्फोरस का एक उत्कृष्ट स्त्रोत हैं।

तालिका 1 : रामदाना फसल के पोषक तत्वों (ग्राम प्रति 100 ग्राम दाना) का अन्य कदन्न फसलों के पोषक तत्वों से विश्लेषण

पोषक तत्व	रामदाना	गेहूँ	चावल	मक्का	बीन
प्रोटीन (प्रतिशत)	14.5	11.8	7.0	9.0	24.8
ऊर्जा (किलोकैलोरी)	374.0	346.0	345.0	365.0	322.0
वसा (प्रतिशत)	10.2	2.7	0.5	5.2	2.5
काब्रोहाइड्रेट (ग्रा.)	62.7	65.7	71.0	70.6	55.4
रेशा (ग्रा.)	8.8	12.5	4.1	9.3	8.5
कैल्शियम (मि.ग्रा.)	162.0	30.0	41	20.0	143.0
लोहा (मि.ग्रा.)	10.0	3.5	3.3	1.8	5.5
मैंग्नीशियम (मि.ग्रा.)	250.0	108.0	64.0	127.0	114.3
फास्फोरस (मि.ग्रा.)	455.0	298.0	235.0	256.0	368.4
पोटेशियम (मि.ग्रा.)	503.0	284.0	268.0	287.0	147.8

उन्नत सस्य विधियाँ

जलवायु :–

रामदाना उष्ण कटिबंधों से लेकर समुद्र तल से उच्च हिमालय तक की जमीन के विविध वातावरण में उगाया जाता हैं। आमतौर पर भूमध्य रेखा के 300 अक्षाशं के भीतर यह फसल उगायी जाती हैं। उच्च हिमालयी क्षेत्रों में इसका उत्पादन बड़े पैमाने पर होता हैं। हालांकि, रामदाना की खेती के लिए उत्थान (समुद्र तल से ऊँचाई) कोई बाधा नहीं है। यह समुद्र तल से 3000 मीटर से अधिक ऊँचाई तक उगाया जा सकता हैं। रामदाना के बीज के अंकुरण के लिए 16–35 डिग्री सेल्सियस तापमान आदर्श माना जाता है। एक बार जब जमने के बाद पौधे की वृद्धि अच्छी तरह से चल रही होती है, तो यह तीव्र सूखा तनाव और अत्यंत कठोर परिस्थितियों में भी उग जाता हैं।

भूमि का चुनाव :–

रामदाना प्रायः सभी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है, परन्तु बलुई दोमट मिट्टी इसे उगाने के लिए उपयुक्त रहती है। भूमि में जल निकास की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए।

बीज एवं बुवाई :–

रामदाना की बुआई का सर्वोत्तम समय मई के द्वितीय पखवाड़े से जून का प्रथम पखवाड़ा है। अधिक देरी करने पर पौधों की बढ़वार अच्छी नहीं होती है तथा उपज कम प्राप्त होती है। एक हेक्टेयर भूमि हेतु 1.5 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। चूँकि इसका बीज काफी छोटा होता है अतः इसे रेत अथवा बारीक मिट्टी में मिलाकर बोना चाहिए। बीज 2–3 से.मी. से अधिक गहराई पर न जाने पाये अन्यथा उसका जमाव नहीं होता है। रामदाना की बुआई प्रायः छिड़काव विधि से की जाती है परन्तु लाइन से बोने के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. रखनी चाहिए। छिड़काव विधि से बोने पर भी पौधों के बीच की दूरी 15 से.मी. तक रखनी चाहिए।

उपयुक्त प्रजातियों का चुनाव

प्रजाति का नाम	विवरण	पुष्पन का समय	पकने की अवधि	पौधे की लम्बाई (से.मी.)	उपज (क्विंटल/ हेक्टेयर)
गुजरात एमरन्थ 1	इस प्रजाति का विकास सरदार कृषिनगर दांतीवाडा विश्वविद्यालय, गुजरात द्वारा वर्ष 1991 में किया गया हैं। इस प्रजाति का चयन स्थानीय जननद्रव्य से किया गया।	70	135	140	15.90
गुजरात एमरन्थ 2	इस प्रजाति का विकास सरदार कृषिनगर दांतीवाडा विश्वविद्यालय, गुजरात द्वारा वर्ष 2000 में किया गया।	70	135	140	15.16
गुजरात एमरन्थ 3	इस प्रजाति का विकास सरदार कृषिनगर दांतीवाडा विश्वविद्यालय, गुजरात द्वारा वर्ष 2008 में किया गया हैं।	75	140	150	16.21

बी.जी.ए.–2 (कपिलासा)	इस प्रजाति का विकास ओडीसा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर द्वारा स्थानीय जननद्रव्य से चयन के द्वारा वर्ष 2005 में किया गया।	70	140	160	16.18
अन्नपूर्णा	इस जाति का विकास राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, शिमला द्वारा उत्तराखण्ड के पौडी जिले के स्थानीय जननद्रव्य से चयन और परीक्षण द्वारा किया गया हैं।	71	132	138	16.22
पी.आर.ए.–1	इस प्रजाति का विकास वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली वानिकी विश्वविद्यालय, रानीचौरी द्वारा किया गया हैं।	65	125	150	18.20
पी.आर.ए.–2	इस प्रजाति का विकास वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली वानिकी विश्वविद्यालय, रानीचौरी द्वारा किया गया हैं।	70	130	140	20.22
पी.आर.ए.–3	इस प्रजाति का विकास वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली उत्तराखण्ड औद्योगिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार रानीचौरी द्वारा किया गया हैं।	70	130	135	22.25
वी.एल.–44	इस प्रजाति का विकास विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा वर्ष 2006 में किया गया हैं।	55	100	135	20.22
दूर्गा (आई.सी.–35407)	इस प्रजाति का विकास राष्ट्रीय आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, शिमला द्वारा जननद्रव्य संख्या (एन.आई.सी. 22535) के चयन से किया गया हैं।	60	110	135	22.25

अन्नपूर्णा

वी.एल.–44

दुर्गा (आई.सी. 35407)

खरपतवार नियंत्रण :–

इस फसल को खरपतवार अधिक नुकसान पहुँचाते हैं। अनुसंधान से पता चला है कि बीज की बुवाई के पश्चात प्रथम 45 दिन तक खरपतवार फसल को सर्वाधिक क्षति पहुँचाते हैं। इसके लिए प्रथम निराई–गुड़ाई बुवाई के लगभग 20 दिन बाद व दूसरी 35 दिन पर करनी चाहिए। प्रथम निराई–गुड़ाई के समय ही फसल के घने उगे पौधों की छंटाई करके कतार में पौधे से पौधे की दूरी 15 सेंटीमीटर कर दें। यदि कहीं पर पौधे कम उगे हो तब वर्षा वाले दिन घने उगे पौधों में से कुछ को जड़ सहित उखाड़ कर वहाँ एक–एक करके रोपाई करें। यह प्रक्रिया सांयकाल के समय करनी चाहिए।

पौधों पर मिट्टी चढ़ाना :–

अनुकूल परिस्थिति मिलने पर रामदाने का पौधा तुरन्त बढ़ता है, कभी–कभी पौधा 6 फीट से भी अधिक ऊँचा हो जाता हैं जिससे अधिक वर्षा व तेज हवा चलने के कारण पौधे गिर जाते हैं एवं उपज में कमी आ जाती हैं। अतः यदि फसल एकलरूप में उगायी जा रही हैं तब पौधों की ऊँचाई घुटनों तक हो जाने पर उनमें

मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। इससे ने केवल पौधों को गिरने से रोका जा सकता हैं, साथ ही खरपतवारों का काफी सीमा तक नियंत्रण किया जा सकता हैं।

कटाई एवं उपज :–

सामान्य तौर पर, फसल 95–100 दिनों में परिपक्व हो जाती हैं। रामदाना के बीज पौधे के सूखने से काफी पहले पक जाते हैं अतः जैसे ही बाली के ऊपरी हिस्से में दाना पूर्णतया विकसित हो जाय, बाली की तुरन्त कटाई कर लेनी चाहिए अन्यथा इसके अधिक पकने पर हवा या वर्षा से इसके बीज झड़ सकते हैं। पौधों से बालियों को काटकर 6–7 दिन तक सुखाना चाहिए तथा सूखी हुई बालियों को डंडे से पीटकर बीजों को अलग करना चाहिए। मड़ाई के पश्चात दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाकर ही भंडारण करना चाहिए। भंडारण हेतु दाने में नमी का प्रतिशत 12–13 प्रतिशत होना चाहिए। उन्नत उत्पादन तकनीकों का उपयोग करके औसतन 20–25 क्विंटल/हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती हैं। सब्जी के उद्देश्य से, बुवाई के 30 दिनों के बाद ली जाने वाली फसल को अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए बाजार में बेचा जा सकता हैं।

खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग :–

रामदाने की अच्छी अपज लेने हेतु उर्वरकों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक हैं। उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर ही करना चाहिए। यदि ऐसा कर पाना सम्भव न हो तब 60 किलाग्राम नत्रजन, 40 किलोग्राम फास्फोरस एवं 20 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस तथा पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई के समय हल के पीछे कूड़ों में देना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा प्रथम निराई–गुड़ाई के पश्चात खड़ी फसल में समान रूप से बिखेर दें। टॉप ड्रैसिंग करते समय खेत में प्रयाप्त नमी होनी चाहिए ताकि उसका पूरा लाभ फसल को मिल सके। परीक्षणों से पता चला हैं कि रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद का 100 कुन्टल प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करने पर उपज में काफी बढ़ोत्तरी होती हैं। अगर फसल को जैविक खेती के अन्तर्गत लगाया जाना है तब 10–15 टन प्रति हेक्टेयर की दर से सड़ी गोबर की खाद का प्रयोग करें। गोबर अथवा कम्पोस्ट की भली प्रकार सड़ी खाद प्रथम जुताई से पूर्व खेत में बिखेर दें ताकि वह जुताई के समय मिट्टी में अच्छी प्रकार मिल जाए।

रोग नियंत्रण :–

रामदाने की फसल में विभिन्न मृदा जनित फफूँदियों द्वारा काफी क्षति पहुँच सकती हैं। फसल बुवाई के समय यदि खेत में पानी का निकास उचित न हो तो पानी के जमाव वाली जगहों पर आर्द्र गलन की समस्या आती हैं। ऐसे में पौधे अंकुरण के समय या अंकुरण के कुछ दिन बाद जमीन की सतह के पास से गलकर मर जाते हैं। इस रोग के नियंत्रण हेतु यह सुनिश्चित कर ले कि खेत में पानी जमा न हो। साथ ही थिरम 75 डी.एस. नामक फफूँदीनाशी रसायन (2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से बीज उपचारित करें।

कभी–कभी बड़े पौधों में भी जड़ विगलन की समस्या हो जाती हैं। प्रभावित पौधों की जड़ों पर भूरे–काले धब्बे बन जाते हैं जो समय के साथ बढ़ते जाते हैं और जड़ें गल जाती हैं जिस कारण पौधे का उपरी भाग पीला पड़कर मुरझा जाता हैं। जड़ सड़न रोग के नियंत्रण हेतु फसल के निचले भागों पर 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल का 15 दिन के अन्तराल पर एक से दो बार छिड़काव करें।

रामदाने के बड़े पौधों में अक्सर पत्तियों पर छोटे भूरे या काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। यह धब्बे मुख्यतः आल्टर–नेरिया नामक फफूँद के प्रकोप से बनते हैं। उचित तापमान व अधिक नमी वाला वातावरण मिलने पर यह धब्बे पत्तियों के काफी बड़े हिस्से पर फैल जाते हैं और प्रभावित पत्ते सूख जाते हैं। इस रोग के लक्षण दिखाई पड़ने पर मेंकोजेब फफूँदी नाशी का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर आवश्यकतानुसार 10–15 दिन के अन्तराल पर एक या दो छिड़काव करें।

जैविक खेती के अंतर्गत रोग नियंत्रण :–

यदि फसल को जैविक खेती के अंतर्गत उगातें हैं तो रोग नियंत्रण के लिये जैव नियंत्रक फफूँदी ट्राइकोडर्मा का प्रयोग किया जा सकता हैं। आर्द्र गलन व जड़ विगलन जैसी समस्या के नियंत्रण हेतु 8–10 ग्राम ट्राइकोडर्मा के पाउडर से प्रति एक कि.ग्रा. बीज को उपचारित करना चाहिये। साथ ही जैव नियंत्रक को खाद में मिलाकर (1 कि.ग्रा. पाउडर प्रति 100 कि.ग्रा. खाद) खेत में बिखेर दें। यह विभिन्न मृदा जनित फफूँदियों के नियंत्रण में उपयोगी होगा। रोग नियंत्रण के साथ–साथ ट्राइकोडर्मा के प्रयोग से अंकुरण प्रतिशत बढ़ता हैं तथा पौधों की बढ़वार भी अच्छी होती हैं। ट्राइकोडर्मा आधारित जैविक फफूँदीनाशक आजकल बाजार में उपलब्ध हैं।

कीट नियंत्रण :–

रामदाना में प्रमुख रूप से पर्णजालक कीट, तना विविल एवं तम्बाकू की सुंडी का प्रकोप देखा गया हैं। पर्णजालक कीट की सुण्डियाँ छोटी अवस्था से ही पत्तियों के हरे भाग को खाती हैं और जैसे–जैसे बड़ी होती हैं, पत्तियों के हरे भाग को खाकर जाल जैसा बना देती हैं तथा पत्तियों को अपने मुँह से निकाले

गये लार द्वारा आपस में जोड़ देती हैं। सुण्डियाँ इनके अन्दर छिपकर पत्तियों को खाती रहती हैं, जिससे पत्तियों पर बना सफेद जाल खेत में दूर से ही स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता हैं। इसका जीवन काल लगभग 20–30 दिनों का होता हैं। तना विविल कीट के भृगंक तने के अन्दर छेद बनाते है एवं आन्तरिक ऊतकों को खाकर खत्म कर देते हैं फलस्वरूप पौधे सुखने लगते हैं। इसके अतिरिक्त तम्बाकू की सुंडी का प्रकोप भी अक्सर देखा गया हैं। इसकी सुण्डियाँ हल्के हरे भूरे रंग की होती हैं जिन पर गहरे रंग की रेखाएँ दिखाई पड़ती हैं। ये पत्तियों को खाकर भारी क्षति पहुँचाती हैं। इस कीट का कुल जीवन चक्र 30–40 दिनों का होता हैं। इसके अतिरिक्त टसर तितली, टिड्डी कीट, माहू कीट एवं कछुआ भृंग इत्यादि का भी प्रकोप थोड़ा बहुत दिखाई पड़ता हैं।

कीटों के नियंत्रण हेतु हमें समेकित कीट प्रबन्धन रणनीति अपनानी चाहिये, जिससे कीटनाशी एवं उनके भक्षक अथवा शोशक कीटों के प्राकृतिक सामंजस्य में बदलाव कम से कम अथवा न के बराबर हो। इसके लिए हमें निम्न क्रिया कलापों को अपनाना चाहिये।

❖ जिन क्षेत्रों में कीटों का अधिक प्रकोप होता हो, वहाँ रबी की फसल कटाई के उपरान्त गर्मी के दिनों में खेत की गहरी जुताई करके कुछ दिनों के लिए छोड़ दें, जिससे कि मिट्टी में पल रहे पर्ण जालक कीट, तम्बाकू की सुण्डी इत्यादि के प्यूपा सूर्य के प्रकाश में नष्ट हो जायें अथवा परभक्षी द्वारा उनका भक्षण हो सके, तदुपरान्त बुवाई करें।

❖ कीटों के अत्यधिक प्रकोप वाले क्षेत्रों में फसल का बदलाव करें।

❖ ज्यादा घनी बुवाई न करें। कतारों की दूरी 50 से.मी. के करीब रखें।

❖ पत्तियों को खाने वाली सुण्डियों के लिए मैलाथियान 5 प्रतिशत धूल अथवा क्लोरपायरिफास 1.5 प्रतिशत धूल का 500–600 ग्राम प्रति (25–30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) की दर से बुरकाव करें। अथवा इण्डोसल्फान (35 ई.सी.) दवा की 2 मि.ली. प्रति लीटर या डेल्टामेथ्रिन (2.8 ई.सी.) दवा की 0.5 मि.ली. प्रति लीटर अथवा हाइड्रोक्लोराइड (50 डब्ल्यू.पी.) दवा की 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। छिड़काव के समय मुंह पर पट्टी अवश्य बांधे। एक नाली खेत में छिड़काव के लिए लगभग 20 लीटर पानी में वांछित दवा मिलाकर घोल बनायें।

जैविक खेती वाले क्षेत्रों में कीट नियंत्रण

जैविक खेती के अन्तर्गत कीट प्रबन्धन हेतु निम्नलिखित क्रिया–कलाप अपनायें।

❖ नीम गिरी चूर्ण के 5 प्रतिशत घोल अथवा बतैन गिरी के 10 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। इसके लिए नीम गिरी 50 ग्राम अथवा बतैन गिरी 100 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से शाम को भिगा कर रख दें। अगले दिन दोपहर के बाद इस घोल को छानकर छिड़काव कर दें।

❖ सभी तितली वर्गीय कीटों के नियंत्रण हेतु जैव कीटनाशी, बैसिलस थूरिजिमेन्सिस को एक किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

❖ पर्णजालक कीटों के परजीवी कीट ट्राइकोग्राम प्रजाति एवं एपेन्टेलिस प्रजाति तथा तम्बाकू की सुण्डी के लिए टेलीनोमस रेमस, केम्पोलेटिस क्लोरिडि, ट्राइकोग्रामा प्रजाति को बढ़ावा देना चाहिये।

निष्कर्ष:–

बुन्देलखण्ड़ के सूखाग्रसित और वर्षा आधारित क्षेत्रों में रामदाना भी एक नगदी फसल के रुप में ली जा सकती है। शोध–परीक्षणों के अनुसार इसकी उत्पादकता 18–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक सुगमतापूर्वक पायी जा सकती है तथा इसके उत्पादन से प्रति हेक्टेयर रु. 20000–45000 लाभ लिया जा सकता है। इस फसल के उत्पादन पर प्रति रुपया निवेश पर कुल 3–6 रुपया प्राप्त होता है जो असिंचित दशा की कई अन्य फसलों से प्राप्त लाभांश से अधिक है।

हमारी राह भले ही भयानक और पथरीली हो, हमारी यात्रा चाहे कितनी भी कष्टदायक हो, फिर भी हमें आगे बढ़ना ही है। सफलता का दिन दूर हो सकता है, पर उसका आना अनिवार्य है।

❋❊❋❊❋

श्रद्धा की कमी ही सारे कष्टों और दुःखों की जड़ है।

सूखाग्रस्त बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पोषण सुरक्षा हेतु सावा (बार्नयार्ड मिलेट) एक क्षमतावान विकल्प

डी.सी. जोशी, आर.पी. मीणा, हनुमान राम एवं मनोज परिहार

सारांश : बुन्देलखण्ड़ क्षेत्र उत्तर प्रदेश के सात और मध्य प्रदेश के सात जिलों में लगभग सत्तर हजार वर्ग किलोमीटर में फैला हैं। यह क्षेत्र देश भर में अपनी अद्वितीय भौगोलिक संरचना और सांस्कृतिक विरासत के लिये जाना जाता हैं। दुर्भाग्यवश विगत एक दशक से भयंकर सूखे की मार झेल रहा यह क्षेत्र अपने कृषि संकट, भुखमरी, कुपोषण, पलायन और बढ़ते ऋण के कारण किसानों की आत्महत्या के लिये देश भर में चर्चा का विषय बना हुआ हैं। इस भयंकर सूखे की स्थिति में क्षेत्र की परंपरागत नकदी फसलों की खेती जो कि अत्यधिक खाद और पानी पर निर्भर करती है, दिन प्रतिदिन मुश्किल होती जा रही हैं। इस संकट की परिस्थिति में इस क्षेत्र की अतिप्राचीन फसलें जो की कम पानी और कम लागत यहा तक की सूखे की भंयकर स्थिति में भी दाना और चारा दोनो प्रदान करती हैं एक विकल्प हो सकती हैं। वर्ष 1970 तक इस क्षेत्र में कई सूखारोधी और पोषण से भरपूर कदन्न फसलें जैसे की कोदो, कुटकी, सावा और रागी उगायी जाती थी और लोगों के भोजन का एक मुख्य हिस्सा थी, परन्तु हरित क्रान्ति के आगमन के साथ इन फसलों का प्रचलन धीरे–धीरे कम होता चला गया और ये लगभग क्षेत्र से विलुप्त हो गयी, अब जब कि लगभग चार दशकों बाद पूरा क्षेत्र भयंकर सूखे की चपेट में हैं, इस क्षेत्र में कृषि को लाभकारी व्यवसाय बनायें रखने के लिये इन परंपरागत कदन्न फसलों की ओर लौटना नितान्त आवश्यक हो गया हैं।

प्रस्तावना :

अपनी उत्कृष्ट प्रकाश संश्लेषण क्षमता और अभूतपूर्व पोषक गुणों के कारण कदन्न इस क्षेत्र में पोषण सुरक्षा के लिये एक महत्वपूर्ण विकल्प हो सकते हैं क्योंकि ये भयंकर सूखे की स्थिति अत्यधिक तापमान और कम उर्वराशक्ति वाली भूमी में भी आसानी से उगायी जा सकती हैं। इन छहः कदन्न फसलों में एक सावा (बार्नयार्ड मिलेट) है। सामान्यतः सावा की खेती हल्की तथा कम उपजाऊ भूमि में की जाती है जिसमें पानी कम ठहरता हो। बुन्देलखण्ड़ में सावा खेती को पुनः प्रचलन में लाये जाने के कई कारण है जैसे सावा की फसल का सूखा सहन करने की क्षमता, फसल द्वारा उच्च तापमान के प्रति सहनशील होना, रोग तथा कीट व्याधि का कम प्रकोप होना, उच्च कोटि का चारा प्राप्त होना तथा दानों में अधिक मात्रा में खनिज पदार्थों का होना इत्यादि। वैज्ञानिक विधि से इस फसल की उपज को 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक आसानी से बढ़ाया जा सकता हैं। किसानों द्वारा सावा की उचित उपज क्षमता का दोहन न कर पाने का मुख्य कारण स्थानीय प्रजातियों का परम्परागत तौर तरीकों द्वारा उगाया जाना हैं। सावा की स्थानीय प्रजातियाँ न केवल कम उपज देती हैं वरना फसल सघनता को भी प्रभावित करती हैं।

विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा तथा अन्य संस्थानों में सावा की फसल पर गहन शोध कार्य किया गया है जिसके फलस्वरूप असिंचित अवस्था में अधिक उपज देने तथा देर से बोने पर भी शीघ्र पककर तैयार होने वाली कई उन्नतशील प्रजातियों के साथ–साथ उन्नत सस्य एवं फसल सुरक्षा विधियों का विकास किया गया है। इस आलेख में इन्ही बातों की जानकारी दी जा रही हैं।

उन्नत प्रजातियाँ :

क्र.स.	राज्य	प्रजातियाँ
1	उत्तराखण्ड	वी.एल.–172, वी.एल. मादिरा–181, वी.एल.–2.7, पी.आर.जे.–1, वी.एल.–29, डी.एच.वी.एम.–93–3
2	उत्तर प्रदेश	वी.एल.–172, वी.एल.–27, अनुराग, वी.एल.–29, डी.एच.वी.एम.–93–3, कंचन
3	तमिलनाडु	को–1, को–2, वी.एल.–181, वी.एल.–29, डी.एच.वी.एम.–93–3
4	कर्नाटका	वी.एल.–172, आर.ए.यू., वी.एल.–181, डी.एच.वी.एम.–93–3, डी.एच.वी.एम.–93–2
5	गुजरात	गुजरात बन्टी–1, डी.एच.वी.एम.–93–3, वी.एल.–172
6	बिहार	वी.एल. मादिरा–181

भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

सावा की विभिन्न उन्नत प्रजातियों में पोषक तत्व एवं गेहूँ तथा चावल से उनका तुलनात्मक विवरण (प्रति 100 ग्राम) :–

प्रजाति का नाम	प्रोटीन (प्रतिशत)	कार्बोहाइड्रेट (प्रतिशत)	वसा (प्रतिशत)	लौह तत्व (मि.ग्रा./100 ग्राम)
वी.एल. 29	7.67	63.5	3.9	16.1
वी.एल. 172	8.94	60.5	4.1	14.7
गेहूँ	11.8	71.2	1.5	5.3
चावल	6.8	78.2	0.5	–

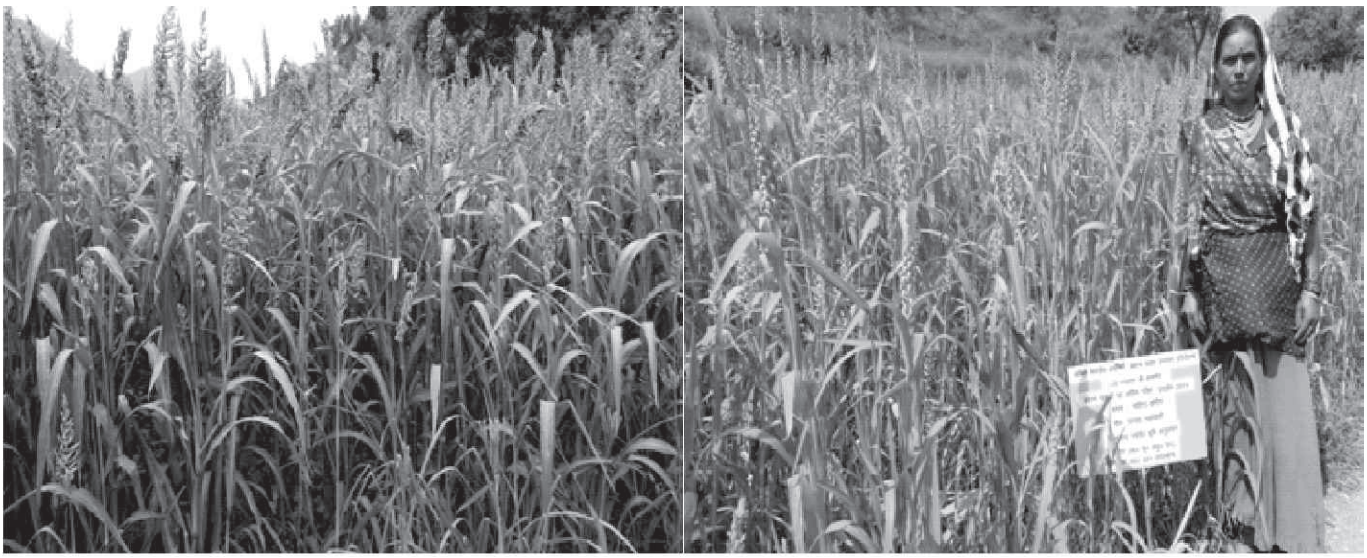

किसानों के खेतों में सावा की उन्नत प्रजातियों वी.एल.–172 एवं वी.एल.–207 का प्रदर्शन

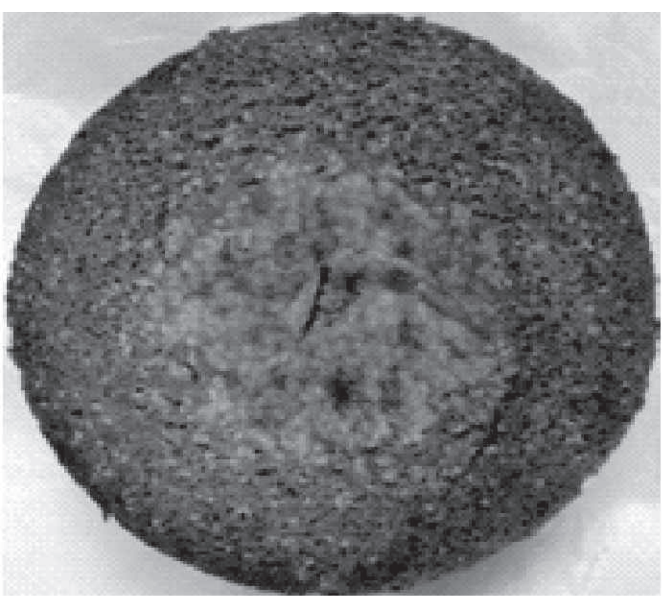

ब्रानयार्ड मिलेट केक सावा का एक मूल्यवृद्धि उत्पाद

उन्नत सस्य विधियाँ

खेत की तैयारी :–

बलुई दोमट मिट्टी सावा की खेती के लिये उपयुक्त रहती है। एक दो जुताई करके खेत का समतलीकरण कर लेते हैं। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाना चाहिए।

खाद एवं उर्वरकः–

मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग अच्छा रहता है। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 5–7 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद के साथ–साथ 40 कि.ग्रा. नत्रजन तथा 20 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हैक्टयर (क्रमशः 800 ग्राम व 400 ग्राम प्रति नाली) प्रयोग करना चाहिए। फास्फोरस की संपूर्ण मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा जुताई के समय पंक्ति में डाल देनी चाहिए। शेष नत्रजन, फसल जमने के लगभग एक माह पश्चात निराई के शीघ्र बाद छिड़क देनी चाहिए। अगर इसकी खेती जैविक कृषि के अंतर्गत कि जाती हैं तो 10–15 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी हुई गोबर खाद का प्रयोग करने से भी उतनी उपज मिलती है, जितनी रसायनिक उर्वरक प्रयोग करने से मिलती है।

बुवाई का समय :–

सावा की उन्नत प्रजातियों की बुवाई मई अंत से जून मध्य तक करने पर भी उतनी उपज प्राप्त होती है जितनी मार्च–अप्रैल में बुआई करने पर होती है। अतः बुवाई का उपयुक्त समय मई अंत से जून मध्य तक रहता हैं।

बुवाई की विधि :–

किसान भाई प्रायः छिड़काव विधि इसकी बुवाई से करते हैं। लेकिन छिड़काव विधि की अपेक्षा पंक्ति में बुवाई करने से उपज में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ निराई–गुड़ाई द्वारा खरपतवार नियंत्रण में आसानी होती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 22.5 से.मी. तथा पौधे से पौधें की दूरी 7.5–10 से.मी. रखनी चाहिए। एक हैक्टयर क्षेत्र के लिए 8–10 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती हैं।

खरपतवार नियंत्रण :–

सावा के खेतों में खरपतवार का प्रकोप बहुत होता है। फसल जमाव के 45 दिनों तक खेत को खरपतवारों से मुक्त रखना अति आवश्यक होता है। बुवाई के 20–25 दिनों तथा 40–45 दिनों के पश्चात निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। खरपतवारनाशी रसायन आइसोप्रोट्रयूरोन खरपतवार नियंत्रण में अधिक लाभप्रद व कारगर साबित हुआ हैं। एक नाली के लिए 15 ग्राम आइसोप्रोट्रयूरोन पाऊडर 15 लीटर पानी में घोल कर बुआई के तुरन्त या 24 घंटे के भीतर समान रूप से खेत में छिड़काव करें। खरपतवारनाशी रसायन तभी प्रभावकारी होगा, जब खेत में पर्याप्त नमी हो। अतः बुवाई तभी करें जब खेत में नमी हो। अगर खेती जैविक तरीके से करते हैं तो खरपतवार नियंत्रण रसायनों द्वारा नही किया जा सकता, ऐसी स्थिति में जैसे ही मई माह में वर्षा होती है तो खेत की जुताई कर एक माह तक खुला छोड़ दे। मानसून आने पर पुनः जुताई करके खरपतवारों को नष्ट करने से भी काफी हद तक खरपतवारों पर आसानी से नियंत्रण पाया जा सकता हैं। बुवाई के 25–30 दिनो के पश्चात प्रथम निराई–गुड़ाई अवश्य करें।

रोग नियंत्रण

कण्ड (स्मट):–

यह सावा का प्रमुख रोग है तथा स्फेसिलाथीका अल्मोरी नामक कवक द्वारा होता है। इस रोग का प्रभाव मुख्यतः पौधे की बालियों पर दिखता हैं। इस रोग के कारण बालियों में कुछ अण्डाशय संक्रमित हो जाते हैं परन्तु बाली के सभी दाने प्रभावित नहीं होते। संक्रमित अण्डाशय गोल, रोएंदार हो जाते हैं और इनका आकार सामान्य दानों से दो या तीन गुना बढ़ जाता है। खेत में ऐसे अण्डाशयों को आसानी से पहचाना जा सकता है। साथ ही अण्डाशयों में बीज की जगह रोगकारक कवक के काले/भूरे सोराई भर जाते हैं जो कि एक पतली परत से ढके होते हैं। फसल की कटाई के समय यह परत फट जाती है और अन्दर भरे कवक के सोराई हवा के साथ फैलकर स्वस्थ बीजों की सतह पर चिपक जाते हैं। यदि इस प्रकार के संक्रमित बीजों की बुवाई अगले साल में की जाए तो बड़े होने पर उन पौधों के अण्डाशय भी संक्रमित हो जाते हैं और पौधे की उपज पर प्रभाव पड़ता हैं। काले सोराई के चिपकने के कारण स्वथ्य बीज भी खाने लायक नही रहते। कण्ड के सोराई पौधे के तनों तथा गांठों पर भी पाये जाते हैं जो अनियमित आकार के होते हैं।

रोकथाम :–

कण्ड रोग के नियत्रंण हेतु सबसे उत्तम तरीका है रोग अवरोधी किस्मों का प्रयोग। सावा की किस्म "पी.आर.जे.–1" इस रोग के प्रति पूर्णतयाः अवरोधी है एवं अन्य उन्नतशील किस्में वी.एल.–29 तथा वी.एल.–172, वी.एल.–207 आदि में यह रोग कम लगता है, अतः इन प्रजातियों की बुवाई की जानी चाहिए। इसके अलावा बीज को बुवाई से पूर्व कार्बेन्डाजिम (2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) की दर से उपचारित करें। साथ ही पुष्पन के समय 0.1 प्रतिशत की दर से कार्बेन्डाजिम का छिड़काव करने से भी इस रोग की रोकथाम कर सकते हैं।

सावा का कण्ड रोग

पत्तियों का झुलसा :–

इस रोग में पौधें की पत्तियों पर हल्के भूरे छोटे–छोटे धब्बे बन जाते हैं जोकि हैल्मिन्थोस्पोरियम नामक कवक के प्रकोप से होते है। उचित तापमान एवं नमी वाले वातावरण में यह धब्बे बड़े हो जाते हैं और आपस में मिलकर पत्तियों के बड़े भाग पर फैल जाते हैं। ताजे धब्बे बीच में भूरे तथा किनारों पर पीले होते हैं जो परिपक्व होने पर बीच में तेज भूरे व चॉकलेटी रंग के हो जाते हैं। यदि रोग से पत्तियों का ज्यादा भाग प्रभावित हो जाए तो इसका असर पौधे की उपज पर भी पड़ता हैं। इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब कवकनाशी के 0.25 प्रतिशत घोल का 12–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

सावा के प्रमुख कीट एवं उनका नियंत्रण :–

सावा का प्रमुख कीट प्ररोह मक्खी है। यह कीट फसल को काफी नुकसान पहुंचाती हैं। अतः इसका नियंत्रण अति आवश्यक है।

प्ररोह मक्खी

सावा की पौध अवस्था का यह मुख्य कीट है। वयस्क कीट एक छोटे आकार की मक्खी होती है जिसके शिशु फसल को हानि पहुँचाते हैं, इसका प्रकोप पौधे की प्रारम्भिक अवस्था में बहुत अधिक पाया जाता हैं। यह शिशु पौधे की प्रारम्भिक अवस्था में मध्य प्ररोह में घुसकर क्षति पहुँचाते हैं फलस्वरूप उसके ऊपरी भाग सूख जाते हैं जिससे पौधे की बढ़वार रूक जाती है और पौधा मर जाता है। इसके नियंत्रण के लिए बुआई के समय इमिडाक्लोप्रिड 5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से बीजोपचार करें अथवा फोरेट 10 प्रतिशत दानेदार दवा का 500 ग्राम प्रति नाली की दर से बुरकाव करना चाहिए। ज्यादा प्रकोप होने पर इमिडाक्लोप्रिड की 0.3 मि.ली. प्रति लीटर अथवा मोनोक्रोटाफास का 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिये। जैविक खेती वाले खेतों में प्ररोह के नियंत्रण के लिए नीम तेल 2 से 2.5 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़के। इस कीट का नियंत्रण स्थानीय पेड़ बतैन के बीजों द्वारा भी किया जा सकता है। इसके लिए बतैन गिरी 100 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से शाम को भिगोकर रख दें। अगले दिन दोपहर के बाद इन बीजों को मसलकर घोल को छान लेते है तथा इस घोल के छिड़काव करने से काफी हद तक प्ररोह मक्खी पर नियंत्रण पाया जा सकता है। एक नाली के लिए 15 लीटर घोल की आवश्यकता होती है।

कटाई :–

फसल की कटाई उचित समय पर कर लेनी चाहिए अन्यथा चिड़ियों के द्वारा नुकसान तथा सड़ने से अनाज उत्पादन कम हो जाता हैं।

मड़ाई व कुटाई :–

सावा की मड़ाई तथा गहाई अत्यन्त कष्टदायक है प्रायः इसकी मड़ाई डंडे से तथा कुटाई चावल की ओखली में कूट कर की जाती हैं। इस परेशानी को देखते हुए विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने विवेक थ्रेसर 1 का विकास किया है जिसके प्रयोग से एक घंटे में 30–35 कि.ग्रा. दानों की मड़ाई या 7–8 कि. ग्रा. मादिरा की कुटाई की जा सकती है। मादिरा के चावल की बाजार में काफी माँग है तथा अच्छे दाम (70–80 प्रति कि.ग्रा.) भी मिलते हैं। अतः इस थ्रेसर से मादिरा से चावल निकाल कर बाजार में बेचकर उचित लाभ कमा सकते हैं। इस थ्रेसर के बारे में अधिक जानकारी विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान अल्मोड़ा से प्राप्त की जा सकती हैं।

निष्कर्षः

अतः उपरोक्त वैज्ञानिक विधि से खेती कर किसान भाई सावा जैसी परम्परागत फसल उगाकर भी उचित लाभ कमा सकते हैं।

अगर संघर्ष न रहे, किसी भी भय का सामना न करना पड़े, तब जीवन का आधा स्वाद ही समाप्त हो जाता है।

*****

जो कुछ भी तुमको कमजोर बनाता है - शारीरिक, बौद्धिक या मानसिक, उसे जहर की तरह त्याग दो।

*****

सच्ची सफलता और आनंद का सबसे बड़ा रहस्य यह है - वह पुरूष या स्त्री जो बदले में कुछ नहीं माँगता। पूर्ण रूप से निःस्वार्थ व्यक्ति, सबसे सफल है।

*****

कष्टों का निःसंदेह एक आंतरिक नैतिक मूल्य होता है।

जौ के स्वास्थ्य लाभ एवं उत्पादन तकनीक

अजीत सिंह खरब[1], दिनेश कुमार[1], विष्णु कुमार[2], आर.पी.एस. वर्मा[1] एवं जी.पी. सिंह[1]

सारांश : जौ उत्तर भारत के मैदानी भाग की एक महत्वपूर्ण रबी फसल है। जौ का विश्व में चावल, गेहूँ एवं मक्का के बाद चौथा स्थान है। विश्व के कुल खाद्यान्न उत्पादन में 7 प्रतिशत योगदान जौ का है। वर्ष 2018—19 के दौरान 0.60 मिलियन हैक्टेयर भूमि में 1.75 मिलियन टन जौ का उत्पादन किया गया और इसकी उत्पादकता 2881 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर रही। जौ की खेती मुख्यतः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर एवं गुजरात में की जाती है। जौ सीमांत भूमि, लवणयुक्त/क्षारीय भूमि या पानी की कम उपलब्धता वाली भूमि, बारानी क्षेत्र आदि में भी अच्छी पैदावार देता है। माल्ट एवं बीयर बनाने के उद्देश्य से राजस्थान, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं पंजाब में अच्छे प्रबंधन द्वारा अच्छी गुणवत्ता वाले दानों के लिए भी इसकी खेती की जाती है।

प्रस्तावना

जौ स्वास्थ्य के लिये लाभकारी गुणों का भण्डार है। विशेषतः जौ कोलस्ट्रॉल घटाने तथा रक्त शर्करा को नियंत्रित करने में उपयोगी पाया जाता है। जौ से कई उत्पाद बनाये जा सकते है जो खाने में रोजाना प्रयोग में लाये जा सकते। जौ का मुख्य उत्पाद माल्ट है, जिससे विभिन्न प्रकार के ऊर्जावर्धक पेय तथा कन्फैक्श्नरी उत्पाद बनाये जाते है तथा कुछ दवाईयों में भी प्रयोग किया जाता है। गर्मियों में पिया जाने वाला पारम्परिक उत्पाद सत्तू जौ का ही बनता है। यह ठंडक प्रदान करता है इसलिये इसे ठंडाई के रूप में और अधिक प्रचलन में लाना चाहिये। सत्तू एक प्रकार से कोल्ड ड्रिंक का प्रारूप है। जौ को 20 प्रतिशत तक गेहूँ में मिलाकर, पिसा कर आटा बनाकर, रोटी बनाई जा सकती है। इसमें अधिक बीटा ग्लूकन होने से यह कोलस्ट्रोल एवं शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करता है।

उत्पादन तकनीक एवं उन्नत प्रजाति का चुनाव

प्रजाति का चुनाव क्षेत्रीय जलवायु, उपयोग, संसाधन उपलब्धता तथा उत्पादन स्थिति के हिसाब से करना चाहिए। जैसे देरी से बिजाई तथा समय पर बिजाई की प्रजाति भिन्न है। चारे के लिए या माल्ट के लिये या भोजन के रुप में प्रजातियों में भिन्नता है। लवणीय एव क्षारीय क्षेत्र के लिए भी प्रजातियाँ अलग है। माल्ट के लिए उपयुक्त प्रजातियाँ निम्न ताालिका में दी गई है जिन्हे बुआई के समय तथा क्षेत्रानुसार चुना जा सकता है।

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के लिए जौ की किस्में

क्षेत्र/उद्देश्य	उत्पादन	किस्में	औसत उपज (कि./हे.)	अधिकतम उपज (कि./हे.)
खाद्य जौ की किस्में	समय से बुवाई एवं सिंचित	बी.एच.—902	49.7	61.6
		बी.एच.—946	61.9	66.3
	समय से बुवाई एवं बारानी	आर.डी.—2624	24.8	38.6
		आर.डी.—2660	24.3	34.1
माल्ट जौ की किस्में	समय से बुवाई एवं सिंचित	डी.डब्ल्यू.आर.यु.बी.—52	45.1	58.4
		डी.डब्ल्यू.आर.बी.—160	53.7	74.1
		डी.डब्ल्यू.आर.बी.—92	49.8	69.0
		डी.डब्ल्यू.आर.बी.—101	50.1	67.4
		आर.डी.—2849	50.9	69.2
		डी.डब्ल्यू.आर.बी.—123	48.7	67.3
	देर से बुवाई एवं सिंचित	डी.डब्ल्यू.आर.बी.—73	38.7	53.1
		डी.डब्ल्यू.आर.यु.बी.—64	40.5	61.2
		डी.डब्ल्यू.आर.बी.—91	40.6	58.9
छिलका रहित	सिंचित एवं समय से बुआई	करन—16	29.5	50.5

[1]भाकृअनुप—भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल—132001
[2]रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

उत्तर-पूर्वी मैदानी भाग के लियेः				
खाद्य जौ	सिंचित एवं समय से बुआई	एच.यू.बी.–113	43.3	63.3
		डी.डब्ल्यू.आर.बी.–137	37.93	53.62
		के–551	37.6	49.6
		के–603	29.0	38.4
		के–560	30.4	46.4
छिलका रहित	सिंचित समय से बुआई	गीतांजलि (के–1149)	21.3	27.8
मध्य क्षेत्र के लियेः				
खाद्य जौ	सिंचित एवं समय से बुआई	डी.डब्ल्यू.आर.बी.–137	42.58	67.44
		बी.एच.–959	49.9	67.50
		आर.डी.–2786	50.2	61.40
		पी.एल.–751	47.3	64.10
द्वि–उद्देशीय	सिंचित एवं समय से बुआई	आर.डी.–2715	26.3 (दाना)	177.6 (चारा)
पर्वतीय क्षेत्र हेतुः				
खाद्य जौ	वर्षा आधारित एवं	बी.एच.एस.400	32.7	58.7
	समय से बुआई	वी.एल.बी.–118	30.8	50.0
द्वि–उद्देशीय		बी.एच.एस.–380	20.9 (दाना)	49.4 (चारा)
छिलका रहित		बी.एच.एस.–352	21.9	38.0
क्षारीय एवं लवणीय भूमि हेतुः				
खाद्य जौ	सिंचित एवं समय से बुआई	आर.डी.–2907	35.54	46.01
		आर.डी.–2794	29.9	43.3
		आर.डी.–2552	38.37	45.98
		एन.डी.बी.–1173	35.2	46.2

बीज उपचार

कीट/बीमारी/जैविक खाद	उपचार
दीमक	150 मि.ली. लीटर क्लोरोपयरिफोस (20 ई.सी.) को 5 लिटर पानी में घोल कर 100 किलोग्राम बीज का उपचार करें।
खुली कंगयारी	2 ग्राम वीटावैक्स या बावीस्टीन से एक किलो ग्राम बीज उपचारित करें।
बन्द कंगयारी	थीरम तथा बावीस्टीन/वीटावैक्स को 1:1 अनुपात में मिलाकर 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के लिए प्रयोग करें अथवा टैबुकनाजोल से एक किलो ग्राम बीज उपचारित करें।
जैविक खाद	एजोटोबैक्टर + पी एस बी से भी बीज उपचार करना चाहिए।

बीज को पहले कीट के लिए उसके बाद बीमारी के लिए तथा अंत में जैविक खाद से उपचार करना चाहिए।

बुआई का समय, बीज दर, पंक्तियो की दूरी एवं उर्वरक की मात्रा

उत्पादन स्थिति	बीज दर (कि.ग्रा./हे.)	बुआई का समय	पंक्ति से पंक्ति की दूरी (से.मी.)	उर्वरक की मात्रा (कि.ग्रा./हे.)
समय से (खाद्य जों)	100	1–20 नवम्बर	23	60 नत्रजन, 30 फास्फोरस, 20 पोटाश
समय से (माल्ट)	100	1–20 नवम्बर	18–20	90 नत्रजन, 40 फास्फोरस, 20 पोटाश
देरी से	125	दिसम्बर माह	18–20	90 नत्रजन, 40 फास्फोरस, 20 पोटाश

नत्रजन की आधी मात्रा बुआई के समय तथा आधी पहली सिंचाई के बाद डालनी चाहिए। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा अच्छी गुणवत्ता के लिए 20 किलोग्राम सल्फर प्रति हैक्टर बुआई के समय डालनी चाहिए। जस्ते की कमी वाली भूमि में 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर डालना चाहिए।

सिंचाई

अच्छी पैदावार, दानों की एकरूपता एवं गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु माल्ट जौ को 3–4 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है तथा खाद्य जौ को 2–3 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई कल्लें निकलते समय (बुआई के 30–35 दिन बाद) तथा दूसरी बाली आने की अवस्था (बुआई के 65–70 दिन बाद) तथा तीसरी सिंचाई दाना बनते समय (बुआई के 90–95 दिन बाद) देनी चाहिए। आवश्यकतानुसार चौथी सिंचाई का प्रयोग किया जा सकता है। जहाँ पर स्प्रिंकलर विधि से सिंचाई करनी है तो पहली सिंचाई बिजाई के 20 दिन बाद तथा उसके बाद 25 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवारनाशी	खरपतवार के प्रकार	उत्पाद मात्रा/एकड़	मुख्य खरपतवार
पिनोक्साडेन (एक्सिल 5 ईसी)	संकरी पत्ती	350 मि.ली.	**संकरी पत्ती**
मैटसल्फ्युरान (एलग्रीप)	चौड़ी पत्ती	8 ग्रा.	मंडूसी / कनकी / गुल्ली डंडा, जंगली जई, पोआ घास, लोमड़ घास
2,4–डी (बीडमार)	चौड़ी पत्ती	500 मि.ली.	**चौड़ी पत्ती**
			बथुआ, खरबाथु, जंगली पालक, मैना,
आईसोप्रोट्यूरॉन (आईसोगार्ड 75 डब्ल्यू पी)	संकरी व चौड़ी पत्ती	500 ग्रा.	मैथा, सोंचल / मालवा, मकोय,
हिरनखुरी, कंडाई, कृष्णनील, प्याजी,			
पेन्डीमिथेलीन (स्टॉम्प)	संकरी व चौड़ी पत्ती	1250–1500 मि.ली.	चटरी–मटरी

पानी में बुआई के 1–3 दिन के बाद

- हमेशा खरपतवार रहित जौ के बीज का उपयोग करें।
- खरपतवारनाशी की सही मात्रा, सही समय व उपयुक्त तकनीक द्वारा छिड़काव करें।
- खरपतवारनाशी को अदल–बदल कर उपयोग में लाएं।
- फसल चक्र में चारे वाली फसलें जैसे बरसीम, जई आदि का समायोजन अवश्य करें।
- छिड़काव करने के लिए फ्लैट फैन नोजल का प्रयोग करें।
- जहाँ भी आइसोप्रोट्यूरॉन से कनकी / मंडूसी में प्रतिरोधकता आ गई हैं, वहाँ पिनॉक्साडेन (एक्सिल) या पेन्डीमैथालीन (स्टॉम्प) का उपयोग करें।

सावधानियाँ

- पिनोक्साडेन को 2,4–डी के साथ ना मिलाएं, 2,4–डी का छिड़काव पिनोक्साडेन के छिड़काव के एक सप्ताह के बाद करें।
- छिड़काव बुआई के 30–35 दिन तक अवश्य कर दें।
- खरपतवारनाशी की संस्तुत मात्रा से कम या अधिक मात्रा का स्प्रे ना करें।
- खरपतवार के बीज ना बनने दें।

फसल सुरक्षा

बीमारी/कीट	प्रबन्धन
पीला रतुआ एवं भूरा रतुआ	प्रॉपीकोनाजोल 25 ई.सी. या टैबूकोनेजोल 250 ई.सी. का 0.1 प्रतिशत घोल बना कर छिड़काव करें। एक एकड़ खेत के लिए 200 मि.ली. दवा 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। रोग के प्रकोप तथा फैलाव को देखते हुए दूसरा छिड़काव 15–20 दिन के अंतराल पर करें।

दीमक	खड़ी फसल वाले खेतों में दीमक के उपचार हेतु क्लोरोपाईरिफॉस की 3 लीटर मात्रा प्रति हैक्टर की दर से 20 किलोग्राम बालू या बारीक मिट्टी एवं 2–3 लीटर पानी मिलाकर प्रभावित खेत में बुआई के 15 दिन बाद बिखेरें।
चेपा	इस कीट का प्रकोप शुरू होते ही खेत के चारों ओर (3–5 मी. पट्टी में) इमीडाक्लोरप्रीड 200 एस एल (कॉनफीडोर 200 एस एल) का 100 मि. ली. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। अत्याधिक प्रकोप हाने पर समस्त खेत में 15 दिन के बाद दूसरा छिड़काव करे।
मोल्या या सूत्रकृमि	कार्बोफ्यूरॉन 3जी 33 किलोग्राम प्रति हैक्टर

कटाई एवं भंडारण :

जौ की फसल मार्च के अंत से अप्रैल के प्रथम पखवाड़े तक कटाई के लिए तैयार हो जाती है। माल्ट जौ की प्रजातियों की कटाई मशीन द्वारा उचित नमी (12 प्रतिशत) पर की जानी चाहिए।

निष्कर्षः

जौ में रेशों की मात्रा अधिक होने से पेट भी ठीक रहता है। मल्टीग्रेन आटे मे भी जौ मिलाया जा सकता है तथा इसका लाभ लिया जा सकता है। जौ को विभिन्न उत्पादो जैसे के फलैक्स, बिस्किट या ब्रेड आदि बनाने मे भी प्रयोग किया जाता है। इसलिये बीमारियों से बचने के लिये तथा स्वास्थ्य ठीक रखने का लिये जौ का प्रयोग करना चाहिये।

———————————

कोई मूल्य तब मूल्यवान है जब मूल्य का मूल्य स्वयं के लिए मूल्यवान है।

*****

मुझे सत्य का पालन करना पसन्द है, बल्कि मैंने औरों को उनके अपने भले के लिए सत्य से प्रेम करने और मिथ्या को त्यागने के लिए राजी करने को अपना कर्तव्य बना लिया है। अतः अधर्म का अंत मेरे जीवन का उद्देश्य है।

*****

जीवन में मृत्यु को टाला नहीं जा सकता, हर कोई ये जानता है, फिर भी अधिकतर लोग अन्दर से इसे नहीं मानते –'ये मेरे साथ नहीं होगा।' इसी कारण से मृत्यु सबसे कठिन चुनौती है जिसका मनुष्य को सामना करना पड़ता है।

*****

अज्ञानी होना गलत नहीं है, अज्ञानी बने रहना गलत है।

*****

ईश्वरपूर्ण रूप से पवित्र और बुद्धिमान है। उसकी प्रकृतिगुण और शक्तियाँ सभी पवित्र है। वह सर्वव्यापी, निराकार, अजन्मा, अपरी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिशाली, दयालु और न्याययुक्त है। वह दुनिया का रचनाकार और संहारक है।

जौ ऐसा अन्न – स्वस्थ रखे तन

दिनेश कुमार, विष्णु कुमार एवं अजीत सिंह खरब

सारांश : जौ एक प्राचीनतम एवं गुणों से सम्पन्न अन्न है। जौ को हमारे सभी धार्मिक कार्यों में भी सम्मिलित किया जाता है, यह दर्शाता है की जौ का महत्व बहुत अधिक है। परन्तु समय के साथ हम जौ का उपयोग कम करते गए तथा उसका मुख्य कारण गेहूँ की बेहतर किस्में, पानी की निश्चित उपलब्धता, बदलती जीवन–शैली, खान–पान की आदतों में बदलाव तथा बढ़ता शहरीकरण है। हालाँकि जैसे समय के साथ हर चीज का उत्थान एवं पतन होता है, जौ भी समय के साथ दोबारा उत्थान की तरफ है।

प्रस्तावना

पिछले दशक में पश्चिमी देशों में हुए अनुसंधान में यह पाया गया है की जौ एक बहुत ही स्वास्थ्यवर्धक अन्न है। जौ को हृदय के लिए विशेष रूप से तथा आँतों व मधुमेह के रोगों में यह अत्यंत गुणकारी पाया गया है। जौ एक ऐसा अन्न है जिसमे घुलनशील रेशों की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। घुलनशील रेशों में बीटा ग्लूकन नामक पदार्थ मुख्य रूप से पाया जाता है। हालाँकि यह पदार्थ जई में भी होता है परन्तु जौ में यह पूरे दानों में फैला होता है तथा छिलका उतारने पर अपेक्षाकृत कम क्षय होता है। बीटा ग्लूकन की मात्रा जौ में 2 से 8 प्रतिशत तक पायी गयी है। बीटा ग्लूकन खाद्य जौ में अधिक मात्रा में तथा माल्ट जौ में कम मात्रा में होना चाहिए। बीटा ग्लूकन की अधिक मात्रा होने से रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम होती है तथा शर्करा की मात्रा भी कम होती है, अतः यह हृदय रोगों तथा मधुमेह के रोगों से बचने में अत्यधिक गुणकारी है। बीटा ग्लूकन आँतो के कैंसर के बचाव में भी गुणकारी पाया गया है परन्तु अभी इस विषय पर और जानकारी व अनुसंधान हो रहा है। जौ के इस गुणकारी तत्व के अलावा विटामिन ई की मात्रा भी अन्य अन्नों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है अतः जौ के उपयोग से रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ सकती है।

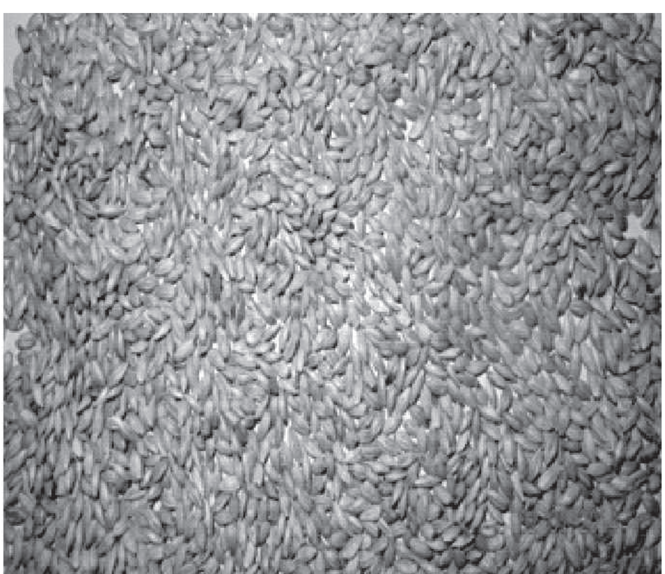

जौ के नियमित सेवन से हम कई प्रकार के रोगों से अपने आप को बचा सकते हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अंतर्गत भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसन्धान संस्थान में जौ की विभिन्न प्रजातियों के अवलोकन के पश्चात् अधिक व कम बीटा ग्लूकन की मात्रा वाली प्रजातियाँ चिन्हित की गयी हैं। अधिक बीटा ग्लूकन युक्त जौ की प्रजातियों को बेहतर प्रजाति विकास में तथा विभिन्न प्रकार के उत्पाद बनाने में प्रयोग किया जा रहा है। इस लेख में कुछ जौ आधारित संभावित उत्पादों के बारे में लिखा गया है।

जौ आधारित बहुअन्न आटा : आजकल बहुअन्न आटे का प्रचलन खासकर शहरी क्षेत्रों में बढ़ रहा है, चूँकि लोग स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हो रहे हैं। आटे का उपयोग मुख्तयः चपाती बनाने में होता है तथा विशेषकर उत्तर भारत में चपाती मुख्य भोजन का हिस्सा है। अतः यदि जौ और गेहूँ मिश्रित उपयोग किया जाये तो चपाती खाने के साथ स्वास्थ्य लाभदायक तत्व का भी सेवन होगा।

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान में किये गए प्रयोगों में यह पाया गया है कि छिलका रहित जौ को 30 प्रतिशत तक गेहूँ के साथ मिलाने से अच्छी गुणवत्ता की चपाती बनायी जा सकती हैं।

जौ का सत्तूः यह गर्मियों में पिया जाने वाला भारत का पारम्परिक उत्पाद है। इसे ठंडक प्रदान करने वाला उत्पाद माना गया है। इसे बनाने के लिए मुख्य रुप से भुने हुए चने का आटा, भुने हुए जौ का आटा व विभिन्न प्रकार के मसालों का प्रयोग किया जाता है। यह उत्पाद खासतौर पर बिहार व पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रसिद्व है।

जौ के फ्लैक्स : जौ के फ्लैक्स, छिलका सहित या छिलका रहित जौ से बनाए जा सकते है। इसके लिए जौ को पहले भाप से पकाया जाता तथा फिर फ्लैक्स में बनाकर सुखाया जाता है। जौ के फ्लैक्स को दूध के साथ नाश्ते के रुप में खाया जा सकता है, जैसा कि ऊपर बताया गया है इस प्रकार का नाश्ता स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो सकता हैं। जौ के फ्लैक्स को ब्रेड, मफीन या कुकीन इत्यादि में भी मिश्रित किया जा सकता है।

जौ के माल्ट आधारित उत्पाद : जौ एक ऐसा अन्न है जिसकी काफी प्रजातियों में छिलका बीज के साथ पूरी तरह चिपका रहता है। दूसरा इसके भ्रूण में ऐसे किण्वक पाए जाते है जो स्टार्च व प्रोटीन को छोटे अवयवों में तोड सकते है। इन गुणों के कारण जौ को माल्ट बनाने में प्राथमिकता दी जाती है। माल्ट के बढ़ते उपयोग की वजह से भारत में जौ उत्पादन में किसान पहले से अधिक रुचि ले रहे है। माल्ट का प्रयोग बीयर बनाने में, ऊर्जा प्रदान करने वाले पेय बनाने में तथा कन्फेक्शनरी इत्यादि में किया जाता है। माल्ट बनाने हेतु कुछ जौ की विशेष प्रजातियाँ प्रयोग की जाती है। इनमें से दो पंक्ति जौ को प्राथमिकता दी जाती है। भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान ने पिछले कुछ वर्षो में उन्नत जौ की प्रजातियाँ विकसित की है। इनमें से डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी.–52, डी.डब्ल्यू.आर.–73, डी.डब्ल्यू.आर.बी.–123, डी.डब्ल्यू.आर.बी.–160 व डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी.–64 मुख्य है। हाल ही के वर्षो में जौ के कुल उत्पादन का करीब 25 प्रतिशत उपयोग माल्ट उपयोग में हो रहा है। इसके और बढ़ने की उम्मीद है।

निष्कर्षः

जौ वास्तव में एक पवित्र अन्न है तथा आज के औषधीय विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि इसका सेवन स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी है। आज के भाग–दौड़ भरे तनावपूर्ण जीवन में जौ व इसके उत्पादों को हमें नियमित रुप से प्रयोग करना चाहिए ताकि तनाव जनित बीमारियों से बचें रहें।

मानव जीवन में तृष्णा और लालसा है, और ये दुःख के मूल कारण है।

*****

आत्मा अपने स्वरूप में एक है, लेकिन उसके अस्तित्व अनेक है।

*****

वह अच्छा और बुद्धिमान है जो हमशा सच बोलता है, धर्म के अनुसार काम करता है और दूसरों को उत्तम और प्रसन्न बनाने का प्रयास करता है।

*****

उपकार बुराई का अंत करता है। सदाचार की प्रथा का आरम्भ करता है और लोक कल्याण तथा सभ्यता में योगदान देता है।

ज्वार की आधुनिक खेती के तरीके

रूमाना खान, विष्णु कुमार एवं अमित तोमर

सारांश : भारत में खाद्यान्न फसलों में क्षेत्रफल की दृष्टि से ज्वार का चावल व गेहूँ के बाद तृतीय स्थान है। ज्वार को मोटा अनाज कहते हैं तथा मोटे अनाजों को निम्न श्रेणी का माना जाता है, लेकिन दूसरे मोटे अनाजों की अपेक्षा ज्वार का अधिक महत्व होने की वजह से इसे मोटे अनाजों का राजा कहते हैं। ज्वार में खनिज लवण, गेहूँ व चावल के मुकाबले अधिक होते हैं। प्रति 100 ग्राम ज्वार में प्रोटीन 10.4 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट 72.6 ग्राम, वसा 1.9 ग्राम, रेशा 1.6 ग्राम, खनिज लवण 1.6 ग्राम, कैल्शियम 25 मिलीग्राम तथा फास्फोरस 22.2 मिलीग्राम पाये जाते हैं। ज्वार की प्रोटीन में लाइसीन अमीनो अम्ल की मात्रा 1.4 से 2.4 प्रतिशत तक पाई जाती है। इसके दाने में ल्यूसीन अमीनो अम्ल की अधिकता होने के कारण ज्वार खाने वाले लोगों में पैलाग्रा नामक रोग का प्रकोप हो सकता है।

जलवायु

ज्वार गर्म जलवायु की वर्षा आधारित खेती की प्रमुख फसल है। ज्वार उत्तरी भारत में खरीफ के मौसम में तथा दक्षिण भारत में खरीफ और रबी दोनों मौसम में उगायी जाती है। असिंचित अवस्था में इसकी खेती मुख्य रूप से खरीफ में हो पाती है। ज्वार की फसल के लिए अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। बीज अंकुरण के लिए न्यूनतम तापक्रम 7.0–10 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए। पौधों की सर्वोत्तम बढ़वार के लिए औसत तापमान 26 से 30 डिग्री सेल्सियस अनुकूल माना गया है। इसकी खेती के लिए 60–100 से.मी. वार्षिक वर्षा उपयुक्त होती हैं। ज्वार की जड़ें मिट्टी में गहराई तक जाती हैं तथा उनमें भूमि से जल शोषण करने की क्षमता अधिक होने के कारण सूखा सहन करने की क्षमता भी अधिक होती है, इसलिए यह कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी उगाई जा सकती है। नमी की कमी होने से इसके पौधों की वृद्धि रूक जाती है और ज्यों ही वर्षा होती है तो बढ़वार पुनः शुरू हो जाती है इसलिए ज्वार को 'कैमल क्रॉप' भी कहा जाता है।

भूमि

ज्वार के लिए दोमट और बलुई दोमट भूमि अच्छी मानी जाती है। उचित जल निकास वाली भारी मिट्टी (मटियार दोमट) सर्वोत्तम होती है। असिंचित अवस्था में अधिक जल धारण क्षमता वाली मृदाओं में ज्वार की पैदावार अधिक होती है। ज्वार की फसल 6 से 8.5 पी.एच. मान वाली भूमि में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

खेत की तैयारी

भारी मिट्टी एवं अधिक खरपतवारयुक्त क्षेत्रों में खरपतवारों को नष्ट करने तथा प्रारम्भिक बढ़वार एवं उपज के लिये गोबर या कम्पोस्ट की खाद डाल कर एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद में डिस्क हैरो या कल्टीवेटर या देशी हल से दो जुताई कर मिट्टी को भुरभुरा कर लेना चाहिए। बुवाई से पूर्व पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए।

उन्नत किस्में

सी.एस.एच.–5, सी.एस.एच.–6, सी.एस.एच.–9, सी.एस.एच.–13, सी.एस.एच.–14, एस.पी.वी.–245, एस.पी.वी.–346, सी.एस.वी.–13, सी.एस.वी.–15, सी.एस.वी.–17 और प्रताप ज्वार–1430 आदि।

हरे चारे के लिए उन्नत किस्में

एक कटाई वाली उन्नत किस्में : राजस्थान चरी–3, राजस्थान चरी–1, राजस्थान–2, पूसा हरी–6, सुंडिया, धीमी (देशी) आदि।

बहु कटाई वाली उन्नत किस्में : एस.एस.जी. 59–3 एवं एम.पी. चरी आदि।

मीठे ज्वार की किस्में : एस.एस.वी.–53, 96 और 84 आदि जैव ईंधन (इथेनाल उत्पादन) के लिए सर्वोत्तम किस्म हैं।

बीज उपचार

ज्वार के बीजों को 3 ग्राम थिरम या 4 ग्राम गन्धक चूर्ण से प्रति किलोग्राम बीज दर से उपचारित करें। एजोस्पाइरिलम एवं फास्फोरस जीवाणु खाद (500 ग्राम हेक्टेयर) से भी बीजोपचार करें। इससे 20 प्रतिशत नत्रजन और 25 प्रतिशत फास्फोरस की प्रति हेक्टेयर बचत की जा सकती है।

रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय,
झाँसी

बीज दर

बहु कटाई वाली किस्मों के लिए बीज दर 35–40 किलो तथा अनाज और चारा दोनों के लिए बोई जाने वाली किस्मों के लिए बीज दर 12–15 किलो प्रति हेक्टेयर होनी चाहिए।

बुवाई का समय

खरीफ में बुवाई का उचित समय 25 जून से 15 जुलाई है या बरानी क्षेत्रों में इसकी बुवाई वर्षा से शुरू होते ही कर देनी चाहिए।

बुवाई की विधि

ज्वार में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10–12 से.मी. रखनी चाहिए। बीज 3–4 से.मी. गहराई पर बोना चाहिए। अधिक गहराई में बीज का अंकुरण नहीं होता है। चारे वाली किस्मों को 25–30 से.मी. की दूरी पर कतारों में बोना चाहिए। ज्वार की उन्नत तथा संकर किस्मों के लिए 1,80,000 प्रति हेक्टेयर पौध संख्या की अनुशंसा की जाती है।

खाद एवं उर्वरक

ज्वार की अच्छी उपज के लिए फसल में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग उचित मात्रा में करना आवश्यक रहता है। मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करें। इसके लिए 10–15 टन अच्छी सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट बुवाई के 3 सप्ताह पूर्व देवें। उसके बाद उत्तम उपज के लिए सिंचित फसल के लिए 80–120 किलोग्राम नत्रजन, 40–60 किलोग्राम फास्फोरस और 20–25 किलोग्राम पोटाश (आवश्यक हो तो) प्रति हेक्टेयर की दर से विभिन्न उर्वरकों द्वारा देवें। नत्रजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय 8–10 से.मी. की गहराई पर डाल देवें। नत्रजन की शेष मात्रा बुवाई के 30–40 दिन बाद खड़ी फसल में सिंचाई के समय दे सकते हैं। बहु कटाई वाली किस्मों में उपरोक्त खाद एवं उर्वरकों के अलावा प्रत्येक कटाई के 3 से 4 दिन बाद 30 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से देकर सिंचाई करें ताकि फुटान अच्छी हो सके। जिंक की कमी वाले स्थानों पर 20–25 किलोग्राम जिंक सल्फेट का प्रयोग पैदावार बढ़ाता है। असिंचित ज्वार में नत्रजन की कुछ मात्रा पत्तियों पर छिड़काव करके भी दी जा सकती है। ज्वार की फसल में पत्तियों पर 3 प्रतिशत यूरिया का घोल 1000 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़कें, जब पौधे 5–6 सप्ताह के हो जाएं।

सिंचाई

ज्वार की फसल अधिकांशतः बारानी क्षेत्रों में उगाई जाती है। परन्तु इसकी उन्नत किस्मों से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए सिंचाई की उपयुक्त सुविधा होना आवश्यक रहता है। वर्षा न होने की स्थिति में ज्वार में फूल आते समय, फसल में सिट्टे निकलते समय तथा दाना भरते समय अर्थात् बुआई से क्रमशः 30, 55 और 75 दिन बाद तद्नुसार सिंचाई करना लाभकारी पाया गया है।

खरपतवार नियंत्रण

खरीफ की फसल में खरपतवार अधिक उगते हैं। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में निराई–गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण हो जाते हैं। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु एट्राजीन 0.5 से 1 किलो प्रति हेक्टेयर सक्रिय तत्व अंकुरण से पूर्व छिड़काव करें। छिड़काव करते समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। खेत में ज्वार की फसल में जॉनसन घास का प्रकोप होने पर फसल–चक्र में परिवर्तन कर इस घास को नियंत्रित किया जा सकता है। इन्टर कल्चर के द्वारा भी खरपतवार को नष्ट किया जा सकता है।

तना छेदक और तना मक्खी

बीज को 5 प्रतिशत कार्बोफ्यूरान से उपचारित कर बोने से तना मक्खी नहीं लगती है। प्रभावित पौधे को बाहर निकाल दें तथा कार्बेरिल का 4 प्रतिशत का घोल बनाकर जमाव के 20 दिन बाद 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। क्यूनालफॉस 25 ईसी 1.5 लीटर और क्लोरपायरिफॉस 1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें। तना छेदक के लिए प्रकाश प्रपंच का प्रयोग कर सकते हैं।

सिट्टे की मक्खी

कार्बेरिल डस्ट 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

चेपा

मेलाथियान 50 मि.ली. प्रति 50 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करने से चेपा का नियंत्रण हो जाता है।

कण्डवा रोग

प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करना चाहिए। रोग से बचाव के लिए बीजों को 3 ग्राम थीरम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार के पश्चात् बुवाई करें।

पत्ती धब्बा

पौधे उगने के 40–45 दिन बाद, वर्षा एवं वातावरण में अधिक नमी के कारण पत्तियों पर पत्ती चकता, अंगमारी, एन्थ्रेक्नोज एवं जोनेट धब्बा रोग हो जाते हैं। रोग दिखाई देते ही मैन्कोजेब के 0.20 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

दानों के लिए कटाई

ज्वार की फसल पकने पर भुट्टों के हरे दाने सफेद या पीले रंग में बदल जाते हैं तो भुट्टों की कटाई की जा सकती है। पौधों से भुट्टे

अलग करने के बाद पौधों को सुखा कर कड़बी (सूखा चारा) के रूप में रखा जाता है। उसके बाद भुट्टों की थ्रेसर से गहाई करें।

चारे के लिए कटाई

एक कटाई वाली किस्मों की कटाई 50 प्रतिशत फूल आने पर ही करें। बहु कटाई वाली किस्मों की पहली कटाई बुवाई के करीबन 60 दिन बाद एवं अगली कटाई फूल आने की अवस्था पर करें। कटाई 8 से 10 से.मी. की ऊँचाई से करें ताकि फुटान अच्छी हो सके।

ज्वार की पेड़ी फसल

ज्वार की फसल की पेड़ी रखने के लिए फसल की कटाई भूमि की सतह से लगभग 8–10 से.मी. ऊपर से की जानी चाहिए। तत्पश्चात् दूसरे दिन सिंचाई करनी चाहिए। पेड़ी वाली फसल में पंक्तियों के बीच 30–40 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। पौधों में फूल आते समय व दाना भरते समय एक या दो सिंचाई करना चाहिए। पेड़ी फसल लगभग 80 दिन में पक कर तैयार हो जाती है।

उपज

किसान उन्नत कृषि क्रियाएं अपनाकर ज्वार की अच्छी उपज प्राप्त कर सकते हैं।

ज्वार किस्में	**उपज (क्विंटल/हेक्टेयर)**	
	दानें	**कड़बी (सूखा चारा)**
संकर	40–45	80–100
संकुल	35–40	100–120
देशी	10–15	100–150
	हरा चारा	
एकल कटाई	350–500	
बहु कटाई	750–1050	

भण्डारण

दानों को भण्डारित करने के पहले उन्हें अच्छी तरह धूप में सूखा लेना आवश्यक है। भण्डारित किये जाने वाले दानों में नमी का अंश 12 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

सावधानी

ज्वार के पौधों की पत्तियों में छोटी अवस्था में एक ग्लूकोसाइड (धुरिन) पाया जाता है, जिससे हाइड्रोसायनिक अम्ल पैदा होता है। इस अवस्था में चारा पशुओं को अधिक मात्रा में खिलाने पर पशुओं की मृत्यु भी हो सकती है। पौधों की वृद्धि के साथ–साथ अम्ल की सान्द्रता कम हो जाती है तथा बाद में चारा हानिकारक नहीं रहता है। इसलिए पशुओं को ज्वार का हरा चारा अच्छी वर्षा होने के बाद ही खिलाना चाहिए तथा छोटी अवस्था में खेत में चरने से बचाना चाहिए।

निष्कर्षः

ज्वार भारत में उत्तरी राज्यों की एक प्रमुख चारे की फसल है। इसे विभिन्न राज्यों में खरीफ, रबी तथा जायद तीनों ऋतुओं में उगाया जाता है। राजस्थान में ज्वार की खेती दाना एवं स्वादिष्ट और पौष्टिकता चारे के लिए की जाती है। तथा बहुत से क्षेत्रों में मुख्य रूप से चारे के लिए की जाती है। हरे चारे के अतिरिक्त ज्वार से साइलेज भी तैयार किया जाता है, जिसे पशु बहुत ही चाव से खाते हैं। ज्वार का दाना बड़ी मात्रा में पशुओं का आहार बनाने के लिए उपयोग में आता है। इसके अलावा ज्वार व मक्का का मिश्रित पशु आहार बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। ज्वार के दानों से बीयर व एल्कोहल भी तैयार किये जाते हैं।

काम करने से पहले सोचना बुद्धिमानी, काम करते हुए सोचना सतर्कता और काम करने के बाद सोचना मूर्खता है

*****।

दुनिया को सर्वश्रेष्ठ दीजिये और आपके पास सर्वश्रेष्ठ लौटकर आएगा।

–महर्षि दयानन्द सरस्वती

कदन्न फसलों में लगने वाले कीड़े एवं उनकी रोकथाम

सुन्दर पाल पंवार

सारांश : भारत में उगाई जाने वाली खरीफ की फसलो में मोटे अनाज वाली फसलों को उनके श्रेष्ठ पोषण गुणों लिए जाना जाता है। इनकी खेती शुष्क क्षेत्रों में अपना क्षेत्र और उत्पादन दोनों को बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर रही है लेकिन साथ ही साथ इसमें कीड़ों और बीमारियों की संख्या बढती जा रही है। इनमे तना बेधक, गुलाबी तना बेधक, जड़ का माहू, बदबूदार कीड़ा, बाली से रस चूसने वाला बग, बाली की सुंडी एवं कल्ला मक्खी आदि मुख्य कीड़े हैं जो कि लगभग 40 से 75 प्रतिशत तक नुकसान करते हैं।

परिचयः

बुंदेलखण्ड उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के 14 जिलों में फैला क्षेत्र है। कुछ समय पहले समाचार सुर्खियों के अनुसार एवं कुछ सर्वेक्षणों में दावा किया गया कि बुंदेलखंड के 17 प्रतिशत लोग घास की रोटियो पर अपना परिवार चला रहे हैं। बीते कुछ वर्षो मे बुंदेलखण्ड ने कृषि उत्पादन क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। भारत में सूखे की मार झेलने वाला बुंदेलखण्ड दाल वर्गीय और बाजरा वर्गीय फसलों के उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। भारत विश्व में कई प्रकार के कदन्न फसलों को उगाने वाला सबसे बड़ा उत्पादक है। बाजरा जिसे अक्सर मोटे अनाज के रूप जाना जाता है तथा पोषण संबंधी श्रेष्ठता के कारण उन्हें अब पोषक या पौष्टिक अनाज के रूप में माना जाता है। भारत में विभिन प्रकार की कदन्न फसलों जैसे ज्वार, मोटा बाजरा, रागी, कोदो, फॉक्स टेल, लिटिल मिलेट्स, परोसो मिलेट्स और बार्न्यार्ड मिलेट्स आदि उगायी जाती हैं। कदन्न फसलें सूखे क्षेत्रों मे कम उर्वरता वाली मिट्टी और अधिक तापमान पर भी आसानी से उगाया जा सकती हैं। कदन्न फसलों पर विभिन प्रकार के कीड़ों का प्रकोप होता है जिसके चलते इसकी उत्पादन क्षमता कम हो रही हैं। हाल ही में रागी और अन्य कदन्न फसलें कई हानिकारक कीड़ो से क्षतिग्रत्स्थ देखी गयी हैं। 150 से भी जायदा कीड़ों की प्रजातियाँ हैं जो कदन्न फसलों को नुकसान पहुँचाती हैं।

विभिन्न कदन्न फसलों के कीट एवं उनकी रोकथामः–

तना छेदक कीट (चिलो पार्टेल्लुस)ः यह कीट लेपिडोप्टेरा गण की क्रेम्बिडीए परिवार का सदस्य है। इसके द्वारा 25 से 30 प्रतिशत तक फसलों को नुकसान होता हैं। वयस्क पुआल रंग के होते है और सामने वाले पंखों के सिरे पर काले धब्बों की एक श्रृंखला होती है। मादायें समूहों मे पत्तियों पर अण्डे देती है। इसकी सुंडियाँ वृक्ष पर एक ढाल के साथ पीले भूरे रंग की होती है। तने के अन्दर ही प्युपेट करता है। इसे अपना जीवन चक्र पूरा करने में 30 से 40 दिन लगते है।

क्षति के लक्षणः इसकी सुंडियाँ पौधों के तने को छेदकर अन्दर के भागो को खाकर क्षति पहुँचाती है। इससे पौधे का अग्र भाग सूख जाता है और जिसे मृत ह्रदय कहते है। यह आसानी से खींचने पर बाहर निकल जाता है। नई पत्तियों पर छोटे–छोटे छिद्र एक ही श्रृंखला में दिखाई देते है। खेत में 10 प्रतिशत मृत ह्रदय की उपस्थिति इसके आर्थिक क्षति के स्तर को दर्शाता है।

रोकथाम के उपायः कीट की निगरानी के लिए एक प्रकाश प्रपंच प्रति एकड़ में लगाये। प्यूपा को नष्ट करने के लिए फसल कटाई के बाद, फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। फसल चक्र अपनायें। अंतर या मध्य फसल के लिए लोबिया का प्रयोग करें। प्रभावित पौधों को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए। नीम के बीजों का अर्क बनाकर उसकी 50 मिलीलीटर या अजाडारेक्टिन की 2 मिलीलीटर या क्लोरंत्रनिलिप्रोले की 0.2 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिडकाव करें।

जड़ माहू कीट (*टैट्रानयूरा निग्रिअब्डोमिनलिस*)ः यह छोटे और नाशपाती के आकार के हल्के पीले या सुनहरे रंग के होते है। वयस्क और शिशु दोनों ही भूमि सतह के निचे जड़ो से रस चूसते रहते है।

क्षति के लक्षणः प्रभावित पौधों का रंग पीला पड़ने लगता है, पौधों की वृद्धि रुक जाती है जिससे पौधों में कजोरी आ जाती है और वह सूख जाते है। काली चीटियों का जड़ों के पास इकट्ठा होना कीड़ो की उपस्थिति को दर्शाता है।

रोकथाम के उपायः प्रभावित पौधों को कीड़ों सहित काटकर नष्ट कर देना चाहिए। मिथाइल डेमेटोंन 25 ई.सी. या डाईमेथोएट 30 ई.सी. की 20 मिली लीटर मात्रा को 10 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

तने का गुलाबी कीड़ा (*सेसमिया इन्फेरेंस*)ः यह लेपिडोप्टेरा गण में नोक्टिडी परिवार से है। वयस्क शलभ हल्के पीले रंग के साथ पहले जोड़ी पंखो पर गहरे भूरे रंग की धारियाँ होती है। एक मादा अपने जीवन काल में लगभग 150 अंडे देती है जो 2 से 3 पंक्तियों में और पत्ती की दोनों सतहों के बीच में दिये जाते है। अंडो से 7 दिनों में छोटी सुड़ियाँ निकल आती है जो बाद में बैंगनी गुलाबी और लाल भूरे रंग के सिर वाली हो जाती है। गर्मी के दिनों में इनका जीवन काल 25 दिन का होता है लेकिन ठंडे मौसम में यह 75 दिनों का हो सकता है। कोष अवस्था का विकास तने के अन्दर बनी सुरंगो में होता है और जो 12 दिनों में वयस्क बनकर बहार निकलते है। यह

रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय,
झाँसी

अपना जीवन चक्र 45 से 75 दिनों में पूरा कर लेते है और प्रति वर्ष 4 से 6 पीढ़िया होती है।

क्षति के लक्षणः गुलाबी सुड़ियाँ पौधों के तनों को छेद कर अन्दर घुस जाती है और केन्द्रीय भाग को खाकर नष्ट कर देती है जिससे पौधो में मृत हृदय के लक्षण दिखाई देते है।

रोकथाम के उपायः कीड़े के अंडो और सुंडियो को पकड़कर नष्ट कर देना चाहिये। इस कीड़े के प्राकृतिक शत्रु इसको स्वयं ही नियंत्रित करते रहते है। अन्य उपचार के लिए तना छेदक कीट वाले रसायनों का प्रयोग करें।

बाली से रस चूसने वाला बग (*केलोकोरिस अंग्सटेटस*): यह हेमिप्टेरा गण की मिरिडीए परिवार से है। वयस्क नर हरे रंग के और मादायें भूरे रंग की धारियों के साथ हरे रंग की होती है। मादा फूलों के बीच या फूलों की पत्तियों पर 150 से 200 अंडे देती है। अंडो से सात दिन के बाद छोटे हरे रंग के शिशु निकलते है जो 10 से 14 दिनों में प्रौढ़ हो जाते है। अंडे से प्रौढ़ तक का जीवन चक्र 3 सप्ताह का होता है।

क्षति के लक्षणः इसके प्रौढ़ और शिशु दोनों ही पौधे की दुग्ध अवस्था पर दानों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते है। जिसके कारण चूसे गये दाने सिकुड़ कर काले पड़ जाते हैं और उनकी बाजार कीमत घट जाती है।

रोकथाम के उपायः कुइनल्फोस 1.5 प्रतिशत डी.पी. के 375 सक्रिय घटक का प्रति हेक्टयर की दर से फसल की दुग्धावस्था पर छिड़काव करें।

बाली की सुंडी (हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा)ः यह मध्यम आकार के, हल्के भूरे रंग के पतंगे होते है और इनके पहले जोड़े पंखों पर 'V' के आकार के दो काले धब्बे होते हैं तथा पिछले पंखों पर काली पट्टी होती है। हरे रंग की सुडियों के ऊपर छोटी–छोटी व हरे रंग की लाइने और गहरे पीले रंग की धारियाँ होती है। सुडियों के रंग, भूरे रंग से हरे रंग की भिन्नता को दर्शाता है। मादायें पत्तियों पर अलग–अलग और लगभग 387 से 1000 तक अण्डे देती हैं और अंडो से 2 से 4 दिनों में सुड़ियाँ बहार आ जाती है। कोष अवस्था भूमि के अन्दर ही होती है।

क्षति के लक्षणः सुड़ियाँ ही इनकी क्षति की अवस्था और बालियों में छिपकर, विकसित हो रहे दानों को खाती रहती है। इसके द्वारा खाएं गये दानों से एक प्रकार का अर्ध ठोस तरल पदार्थ निकलता रहता है।

रोकथाम के उपायः फसल बुवाई से पहले मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करें। फसलो की उचित दूरी पर बुवाई करें। खेतों में कीड़ो को खाने वाले पक्षियों के बैठने के लिए 'T' आकार में लकड़ी के लगभग 50 से 70 डण्डे प्रति हेक्टयर की दर से फसल के बीच में लगाये। प्रौढ़ को बड़े पैमाने पर पकड़ने के लिए 20 से 25 फेरोमोन जाल प्रति हेक्टयर की दर से खेत में लगायें। रसायनिक उपचार के लिए साईप्रमेर्थिन 10 ई.सी. की 750 मिली लीटर मात्रा प्रति हेक्टयर प्रयोग करें।

कल्ला मक्खी (*अथेरिगोना सोकाटा*)ः यह डिप्टेरा गण का कीड़ा है जो घरेलू मक्खी के जैसा दिकता है लेकिन आकार में थोडा सा बड़ा होता है। मादा के प्रष्ठीय उदर क्षेत्र पर 6 और नर में 4 काले डब्बे होते है। मादायें लगभग एक महीने पुरानी फसल की पत्तियों के निचली सतह पर बेलनाकार अण्डे देती है। जिनसे पीले रंग के पादहीन कीड़े निकलते है। कोष अवस्था शीर्ष भाग में होता है और यह अपना जीवन चक्र 17 से 22 दिनों में पूरा करती है।

क्षति के लक्षणः इसका कीड़ा पौधे के शीर्ष भाग में घुसकर वृद्धि कर रहे भाग को काटकर खा जाता है जिसके कारण पौधे का शीर्ष भाग मर जाता है और मृत हृदय कहलाता है।

रोकथाम के उपायः फसल की बुवाई समय से पहले करें। बुवाई में देरी पर बीज की मात्रा 2 किलोग्राम प्रति हेक्टयर की दर से बढ़ा लें। बुवाई के 15 दिन बाद क्षतिग्रस्त पौधों को निकलकर नष्ट कर दें। 5 फिश मेल ट्रैप प्रति हेक्टयर प्रयोग करें। प्रतिरोधी प्रजातियों का प्रयोग करें। बीज उपचार के लिए इमिडाक्लोप्रिड 70 एस. डब्लू. की 3 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम बीज उपचार के लिए प्रयोग करें। फसल बुवाई के 15 दिन बाद इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत एस. अल. की 3 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलकर छिड़काव करें।

बदबूदार कीड़ा (*नेजारा विरिडुला*)ः यह हेमिप्टेरा गण की पेन्टाटोमाईडीए परिवार से है जिसकी प्रौढ़ और शिशु दोनों अवस्थायें क्षति करती है। प्रौढ़ हरे रंग के होते हैं और आखें गहरी लाल या काली होती है। एक मादा अपने जीवन काल में 250 से 270 अण्डे देती है। शिशु बहुरंगीय धब्बो के साथ भूरे लाल रंग के होते है। यह कीट अपन जीवन चक्र 65 से 75 दिनों में पूरा करता है। इस कीड़े के शरीर से एक बदबूदार तरल द्रव निकलता रहता है।

क्षति के लक्षणः प्रौढ़ व शिशु दोनों ही पौधें के वृद्धि कर रहे दानों से रस चूसते रहते है। रस चूसे गये दानों पर काले धब्बे बन जाते हैं और बाद में बीज सिकुड़कर खराब हो जाते है।

रोकथाम के उपायः मिथाइल डेमेटोंन 25 ई.सी. या डाईमेथोएट 30 ई.सी. की 20 मिली लीटर मात्रा को 10 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें।

निष्कर्षः मोटे अनाज वाली फसलों में सबसे जायदा नुकसान कीड़ों से हो रहा है। ऐसे कीड़े जो पौधों के कोमल भागों जैसे कि नई शाखाएँ, नई पत्तियां, फूल एवं दानों से रस चूसकर पौधों की वृद्धि एवं विकास को रोकते है। पौधों के अंदर छेद करके खाने वाले कीड़ों का नियंत्रण भी जटिल होता है और ये सबसे ज्यादा हानि भी पहुँचाते है। कीड़ों की समस्या को दूर करने के लिए पारिस्थितिक सिद्धांतो पर आधारित एकीकृत कीट प्रबंधन का ही प्रयोग एक सफल और प्रभावी तन्त्र है।

बार्नयार्ड मिलेट पौधा

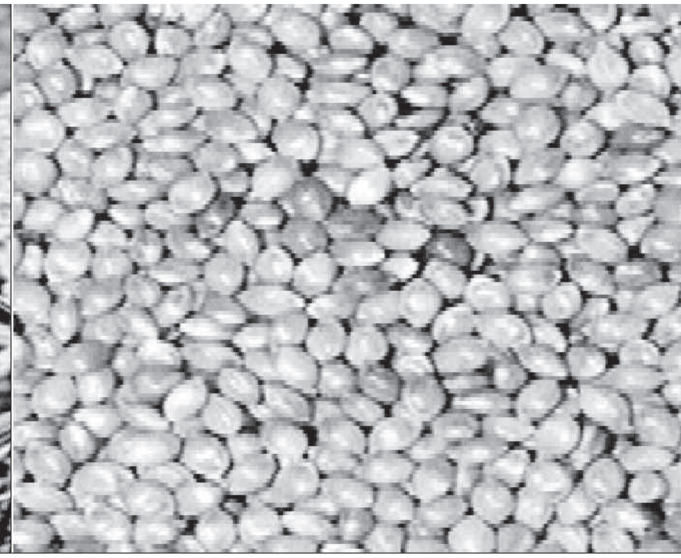

बार्नयार्ड मिलेट बीज

फिंगर मिलेट पौधा

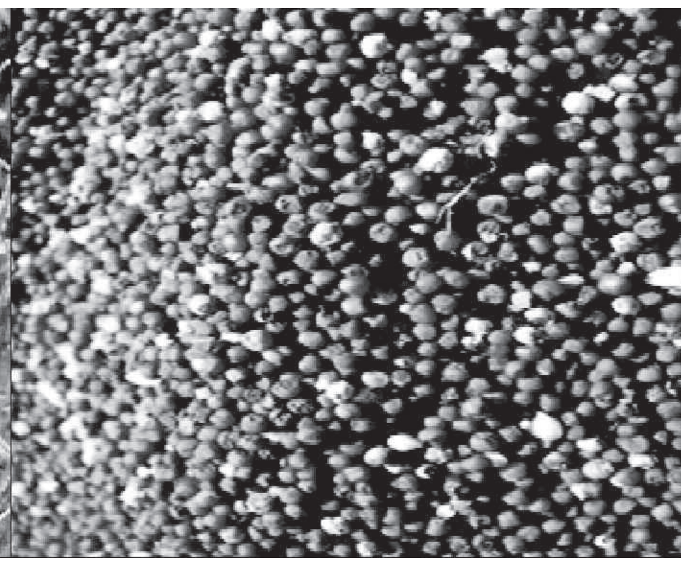

फिंगर मिलेट बीज

फौक्सटेल मिलेट पौधा

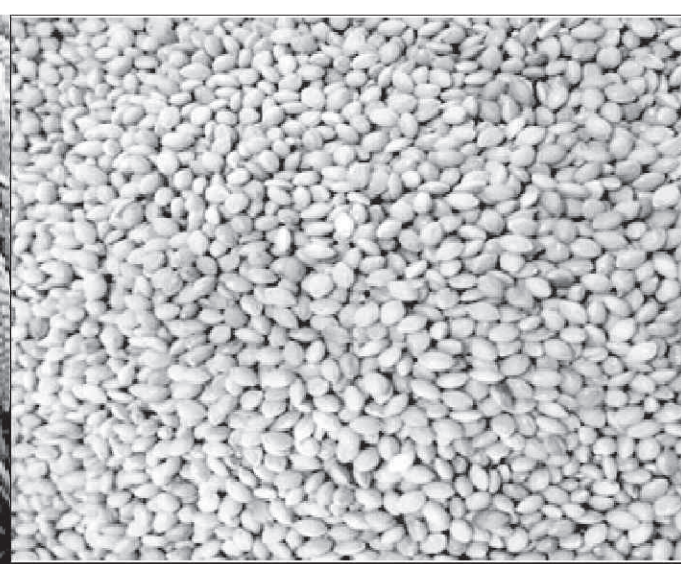

फौक्सटेल मिलेट बीज

कोदो मिलेट पौधा

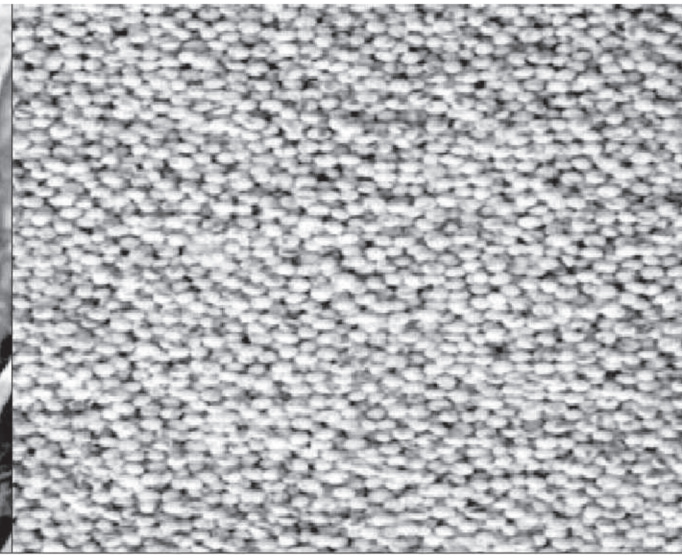

कोदो मिलेट बीज

लिटिल मिलेट पौधा

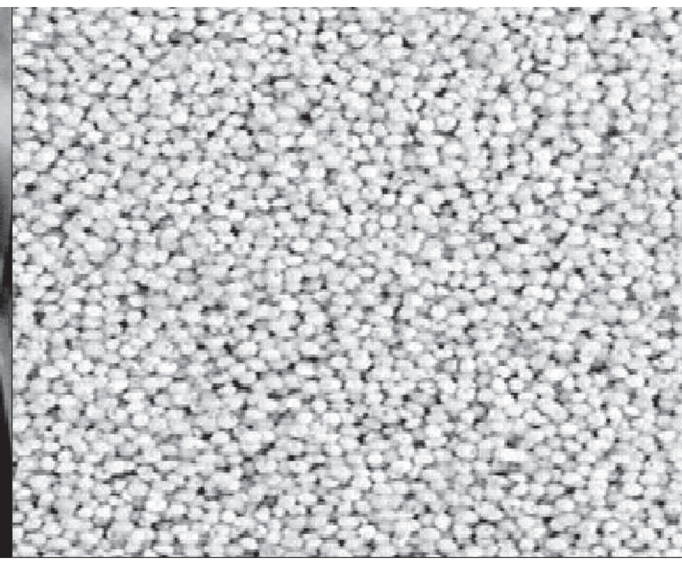

लिटिल मिलेट बीज

प्रोसो मिलेट पौधा

प्रोसो मिलेट बीज

Swachh Bharat Abhiyan

स्वच्छ भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय

झाँसी–284 003 (उ.प्र.) भारत

Darpan Printers & Lamination

2018 NATIONAL YEAR OF MILLETS

Nutricereals For Nutritional Security